80/5

स्वप्नवासवदत्तम्

(हिन्दीभाषान्तर-संस्कृतटीका-प्रसङ्गसहितकठिनस्थलविवेचन-टिप्पणी-भूमिकादिभिः सह संस्कृतम्)

25
Vinod Book Depot
Publishers & Distributors
PACCA DANGA, JAMMU
BOOKS ARE NOT RETURNABLE

संस्कर्ता

आचार्य जगदीशलाल शास्त्री

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली • मुम्बई • कलकत्ता • चेन्नई • बंगलोर
पुणे • वाराणसी • पटना

श्रीमहाकविभासविरचितं

स्वप्नवासवदत्तम्

(हिन्दीभाषान्तर-संस्कृतटीका-प्रसङ्गसहितकठिनस्थलविवेचन-
टिप्पणी-भूमिकादिभिः सह संस्कृतम्)

संस्कर्ता
आचार्य जगदीशलाल शास्त्री

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली • मुम्बई • कलकत्ता • चेन्नई • बंगलौर
पुणे • वाराणसी • पटना

पुनर्मुद्रण : दिल्ली, १९८५, १९८८, १९९०, १९९७

© मोतीलाल बनारसीदास

मोतीलाल बनारसीदास

बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
८, महालक्ष्मी चैम्बर, वार्डेन रोड, मुम्बई ४०० ०२६
१२०, रायपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, चेन्नई ६०० ००४
सनाज प्लाजा, सुभाष नगर, पुणे ४११ ००२
१६, सेन्ट मार्क्स रोड, बंगलौर ५६० ००१
८, कैमेक स्ट्रीट, कलकत्ता ७०० ०१७
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

मूल्यः रु० १५

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड,
दिल्ली ११० ००७ द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज़-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रित

अनुक्रमणिका

१. भूमिका—भास का महत्त्व; देशकाल-निर्णय; भास की कृतियाँ और उनका संक्षिप्त परिचय; प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण।
२. स्वप्नवासवदत्त का मूल पाठ, संस्कृत टीका और हिन्दी-भाषान्तर।
३. परीक्षोपयोगी अंशों की प्रसङ्ग-सहित व्याख्या।
४. टिप्पणियाँ

पात्र-परिचय

प्रमुख पात्र

उदयन—वत्सदेश का नृपति।

यौगन्धरायण—उदयन का प्रधान मन्त्री।

विदूषक—उदयन का नर्मसचिव।

वासवदत्ता—अवन्तिराज प्रद्योत महासेन की पुत्री तथा वत्सनरेश उदयन की प्रिया पत्नी।

पद्मावती—मगधनरेश दर्शक की बहन तथा उदयन की पत्नी।

आवन्तिका—आवन्तिका के वेष में वासवदत्ता।

सामान्य पात्र

चेटी, प्रतीहारी, धात्री, काञ्चुकीय आदि।

वे पात्र, जिनका केवल नाम-निर्देश किया गया है, किन्तु जो रंगमंच पर नहीं आते—

प्रद्योत महासेन—अवन्तिराज, वासवदत्ता के पिता।

गोपालक और पालक—प्रद्योत महासेन के पुत्र।

अंगारवती—प्रद्योत महासेन की पत्नी, वासवदत्ता की माता।

दर्शक—मगधनरेश तथा पद्मावती का भ्राता।

महादेवी—पद्मावती और दर्शक की माता।

रुमण्वान्—उदयन का अमात्य।

पुष्पकभद्र—उदयन का राजज्योतिषी।

भूमिका

महाकवि भास का महत्त्व

महाकवि कालिदास ने अपने नाटक 'मालविकाग्निमित्र' में 'प्रख्यातयश' भास का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि कालिदास के समय में भास के नाटक ख्यात हो चुके थे।

'हर्षचरित' की भूमिका में बाणभट्ट ने भास के नाटक-गुणों का संक्षिप्त परिचय दिया है। बाण ने स्पष्ट लिखा है कि भास को अपने नाटकों से ख्याति मिली।

महाकवि राजशेखर ने 'स्वप्नवासवदत्त' की स्तुति की है। राजशेखर लिखते हैं कि भास के नाटकों की जब अग्नि-परीक्षा हुई तब केवल 'स्वप्न-वासवदत्त' बचा, अन्य नाटक जल गये।

जयदेव कवि ने भास को कविता-कामिनी का हास कहा है—'भासो हासः।' हास्य के प्रतीकभूत विदूषक का जैसा अपूर्व अभिनय 'स्वप्नवासवदत्त' में मिलता है, वैसा किसी अन्य नाटक में नहीं।

भास का समय

भास के समय का निर्धारण सरल नहीं है। श्रीगणपति शास्त्री का विचार है कि भास कौटिल्य और पाणिनि से भी प्राचीन हैं। इनके मतानुसार भास का काल पाँचवीं शती ई० पू० है। डाक्टर वार्नेट इस विचार से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि भास-नाटक-चक्र का कल्पित कवि भास वास्तव में सातवीं शती के एक केरलीय कवि से अभिन्न है।

डॉक्टर लेस्नी, प्रिन्ट्ज, बनर्जी, सुकथंकर आदि विद्वानों ने भास के नाटकों की भाषा-संबंधी अंतरंग-परीक्षा के आधार पर माना है कि भास कालिदास से प्राचीन है। भास का समय अधिकांश विद्वानों ने ईसा-पूर्व तीसरी शती माना है।

भास की कृतियाँ

भास ने तेरह नाटक लिखे हैं, जिनका विभाजन इस प्रकार है—

१. प्रतिमा (राम-वनवास से रावण-वध तक)
२. अभिषेक (राम का राज्याभिषेक)
३. पञ्चरात्र (महाभारत से सम्बद्ध)
४. मध्यमव्यायोग " " "
५. दूतघटोत्कच " " "
६. कर्णभार " " "
७. दूतवाक्य " " "
८. ऊरुभंग " " "
९. बालचरित (महाभागवत में वर्णित कृष्ण के चरित्र से सम्बद्ध)
१०. दरिद्रचारुदत्त (लोककथा पर आधारित)
११. अविमारक " " "
१२. प्रतिज्ञायौगन्धरायण (राजा उदयन की कथा पर आधारित)
१३. स्वप्नवासवदत्त " " " "

भास के नाटकों का संक्षिप्त परिचय

प्रतिमा

प्रतिमा नाटक में भास ने राम के वन-गमन की घटना से लेकर रावण की मृत्यु तक की घटनाओं का वर्णन किया है।

प्राचीन काल में मृत राजाओं की प्रतिमाएँ मन्दिर में रखी जाती थीं। राजा दशरथ की मूर्त्ति भी इस रीति के अनुसार राज-मन्दिर में रखी गई। भरत अपने मामा के घर से जब लौटे तब मन्त्री उन्हें उस राज-मन्दिर में ले गये। दशरथ की मूर्त्ति को वहाँ देखकर भरत को उनकी मृत्यु का भेद खुला। इसी से नाटक का नाम 'प्रतिमा' हुआ है।

अभिषेक

अभिषेक में किष्किन्धा, सुन्दर और लंका-कांडों के कथानक का तथा राम के अभिषेक का वर्णन मिलता है।

पञ्चरात्र

जब द्रोण ने पांडवों को आधा राज्य देने के लिए दुर्योधन से कहा तब दुर्योधन ने प्रतिज्ञा की कि पाँच रातों में यदि पांडव मिल गये तो मैं उन्हें आधा राज्य दे दूंगा। द्रोण के प्रयत्न से पांडव मिल गये और दुर्योधन ने उन्हें आधा राज्य दे दिया। महाभारत में यह घटना नहीं मिलती।

मध्यमव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार, दूतवाक्य और ऊरुभंग—ये नाटक महाभारत की विशिष्ट घटनाओं से संबद्ध हैं।

बालचरित

यह नाटक कृष्ण के बालचरित से संबद्ध है।

दरिद्रचारुदत्त

इस नाटक में दरिद्र, किन्तु चरित्रवान् ब्राह्मण चारुदत्त और रूपवती नगर वेश्या वसन्तसेना का विशुद्ध प्रेम वर्णित है।

अविमारक

इस नाटक में प्रेमकथा का चित्रण बहुत ही सुन्दर, सरस और सजीव है।

प्रतिज्ञायौगन्धरायण

वत्सराज उदयन को उज्जयिनी के नरेश महासेन ने कृत्रिम हाथी के छल से पकड़ लिया था। उदयन के नीति-निपुण मंत्री यौगन्धरायण ने उदयन को ही बन्धन से मुक्त नहीं बल्कि राजकुमारी वासवदत्ता का भी कपट से अपहरण कराया। इस रूपक में यौगन्धरायण की छल-नीति का मनोहर ढंग से प्रदर्शन हुआ है।

स्वप्नवासवदत्त

4.1 इस नाटक में वत्सराज उदयन का मगध की राजकुमारी पद्मावती से विवाह का वर्णन मिलता है। वासवदत्ता के जीवित रहते उदयन दूसरा

विवाह करना नहीं चाहते थे। मन्त्रियों ने वासवदत्ता को अग्निदाह में दग्ध घोषित करके किन्तु वास्तव में उसे छिपाकर उदयन का पद्मावती से विवाह योजित किया और पद्मावती के भाई राजा दर्शक की सहायता से आरुणि को परास्त किया। इस नाटक की सभी घटनाएँ स्वाभाविक हैं।

प्रमुख पात्रों के चरित्र

उदयन

वत्सराज उदयन नायक है। वह संगीत-कला में अद्वितीय है। मृदुप्रकृति, दर्शनीय, कलासक्त आदि गुणों के कारण हम उसे 'धीरललित' नायक कह सकते हैं।

नाटक के पहले तीन अंकों में हम उसे मंच पर नहीं देखते। चौथे अंक में ही वह मंच पर आता है; किन्तु पहले, दूसरे और तीसरे अंक में हम अन्य पात्रों के मुँह से उसका पर्याप्त परिचय प्राप्त कर लेते हैं।

पहले अंक में ब्रह्मचारी के मुँह से उसके चरित्र का कुछ ज्ञान हमें होता है। ब्रह्मचारी कहता है कि जब राजा ने सुना कि वासवदत्ता आग में जल गई तब वह आग में कूदकर अपने प्राण देने को तैयार हो गया। उसके दर्द को ब्रह्मचारी ने उसी के शब्दों में व्यक्त किया है। "इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्" आदि उदयन के परिदेवन हृदय पर एक तीव्र आघात पहुँचाते हैं।

वासवदत्ता के प्रति उदयन की इस मार्मिक संवेदना का तापसी पर भी गहरा प्रभाव पड़ा है। वह भी उदयन की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी है—

"स खलु गुणवान् नाम राजा य आगन्तुकेनाप्येवं प्रशस्यते।"

उसके रूप के बारे में तो चेटी ने उसे धनुष-बाण-रहित साक्षात् कामदेव माना है—"ननु शरचापहीनः कामदेवः।"

इन्हीं गुणों के कारण राजा दर्शक की बहिन पद्मावती उसपर मुग्ध है।

वासवदत्ता ने पद्मावती के इस आकर्षण का समर्थन किया है—'अयमपि जन एवमुन्मादितः ।'

वासवदत्ता की मृत्यु से दुःखित उदयन का पद्मावती के साथ शीघ्र विवाह कैसे हुआ ? इसके उत्तर में दूसरे अंक में धाय कहती है—

"आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।"

क्या उदयन ने स्वयं पद्मावती से विवाह करने का प्रस्ताव रखा ? उत्तर में धाय का कहना है कि वे किसी अन्य प्रयोजन से वहाँ आये थे । उनकी कुलीनता, विज्ञान, आयु और रूप को देखकर महाराज दर्शक ने स्वयं उनसे अनुरोध किया । पद्मावती से विवाह हो जाने के बाद भी वे वासवदत्ता को नहीं भूले । इस संबंध में पद्मावती कहती है कि "वे अनुकूल नायक हैं । वासवदत्ता के गुणों का स्मरण करते हुए भी वे मेरे समक्ष आँसू नहीं बहाते ।"

चौथे अंक में जब हम उदयन को प्रथम बार मंच पर देखते हैं तब हम उन्हें पद्मावती के प्रेम में मग्न पाते हैं । वे शेफालिका के पुष्पों से सुवासित प्रमदवन में भ्रमर-भ्रमरियों के परस्पर प्रेम की रीति में अपना मनोविनोद करते हैं । उन्हें मधुकर-मधुकरियों का वियोग सह्य नहीं है ।

पद्मावती के प्रति उन्हें अगाध प्रेम है, किन्तु वह प्रेम वासवदत्ता की स्मृति को नहीं भुला सका । दृढ़ प्रेम को भुलाना सरल नहीं है—

'दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः'

वे गुणी हैं । गुणज्ञ भी हैं । वासवदत्ता के गुणों की पहचान रखते हैं ।

उनके विलासमय जीवन व्यतीत करने के फलस्वरूप आरुणि ने उनके राज्य का अधिकांश छीन लिया है । दर्शक की सहायता से जब वे आरुणि पर अभियान करने को प्रस्तुत हैं तब उनकी उक्ति में ओजस्विता है । वहाँ भी उन्होंने अपनी उदारता का परिचय दिया है, शत्रु की वीरता को सराहा है—'तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।'

महासेन प्रद्योत के सन्देश में उनकी वीरता की प्रशंसा है, किन्तु उदयन युद्ध में सफलता का श्रेय प्रद्योत, दर्शक, यौगन्धरायण और रुमण्वान् को देते हैं । इससे उनकी गुणज्ञता प्रकट होती है ।

यौगन्धरायण

यौगन्धरायण धैर्यशील, नीति-निपुण, दक्ष आयोजक, प्रत्युत्पन्नमति, गुणज्ञ, सतर्क और स्वामिभक्त मंत्री था। जब उसने देखा कि राज्य का अधिकांश भूभाग आरुणि ने छीन लिया है तब उसने मगधराज दर्शक से सहायता लेकर आरुणि को परास्त करने की योजना बनाई। वासवदत्ता के जीवित रहते उदयन दूसरा विवाह नहीं करना चाहते थे। इधर यौगन्धरायण की इच्छा थी कि मगधराज दर्शक की बहिन पद्मावती के साथ उदयन का विवाह हो जाय, जिससे दर्शक से सहायता मिल सके।

वह आशावादी था। उसे अपनी बुद्धि पर पूरा विश्वास था। उसमें धैर्य परा काष्ठा को पहुँच गया था। योजना-निर्माण के साथ-साथ योजना को सफल बनाने की उसमें पूरी शक्ति थी।

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' से हमें ज्ञात होता है कि वह किस प्रकार उदयन को प्रद्योत के बंधन से छुड़ा लाया और साथ में वासवदत्ता का भी अपहरण कराया। 'स्वप्नवासवदत्त' में उसका एकमात्र ध्येय शत्रु को हराकर राज्य का उद्धार करना है।

प्रथम अंक से ही उसकी योजना का पूरा परिचय मिल जाता है। वासवदत्ता को पद्मावती के आश्रय में रखना अतीव बुद्धिमत्ता का कार्य था। उसकी आत्मा निर्भीक और निश्शंक थी।

प्रथम अंक के बाद हम उसे छठे अंक में देखते हैं। उसकी योजना सफल हो गई। वासवदत्ता की त्यागवृत्ति ने उसकी योजना को सफल बनाया। उसने दर्शक की सहायता से रुमण्वान् के नेतृत्व में आरुणि पर विजय पाई। तो भी उदयन के समक्ष प्रकट होने के समय वह कुछ शंकित है। वह मन में कहता है—

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हिताथं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे॥

उदयन उसके गुणों से भलीभाँति परिचित हैं। यद्यपि वह वासवदत्ता के छिपाने और उसे पद्मावती के आश्रय में रखने के बारे में पूछते हैं तो भी उन्हें उसपर पूरा भरोसा है। यौगन्धरायण के चरित्र का यथार्थ चित्रण तो उदयन के ही निम्नांकित पद्य से हो जाता है—

मिथ्योन्मादेश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः॥

विदूषक

विदूषक का नाम वसंतक है। वह प्रायः राजा का मनोविनोद करता है। विकृत अंग, वाक्य और वेष से वह दर्शकों को हँसाता है। उसे भोजनभट्ट भी कहते हैं। मोदक उसे सदा ही प्रिय हैं।

नाटक में वह पहली बार चौथे अंक में आता है। पद्मावती के विवाह पर बहुत खा लेने के कारण उसे अजीर्ण हो गया है। वैसे तो वह महलों में रहता है, अंतःपुर की बावलियों में नहाता है, किन्तु अब पाचन-शक्ति के दुर्बल हो जाने से उसे नींद नहीं आती। वह हँसाने में निपुण है। उदर-विकार के कारण उसे भोजन अभीष्ट नहीं। तभी तो वह दासी से कहता है—"सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम्। अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्त्त इव कुक्षिपरिवर्त्तः संवृत्तः।"

उसकी कल्पनाएँ भी विचित्र हैं; सुनकर प्रत्येक श्रोता को हँसी आयेगी। चौथे अंक के प्रमदवन-दृश्य में देखिए—"उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्माविगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत्।"

इसी दृश्य में वह उड़ते हुए सारस पक्षियों की कतार की आकाश में फैली हुई बलदाऊ की भुजाओं से तुलना करता है। इस प्रकार की कल्पनाएँ श्रोतागण को अवश्य ही मुग्ध करेंगी।

जब वह हँसाता है तब उसके हँसाने के कई प्रकार होते हैं। उनमें भ्रांति भी एक प्रकार है। पाँचवें अंक में पद्मावती सिर-दर्द से पीड़ित है। उदयन और वह दोनों उसे देखने को जाते हैं। एक पुष्पमाला तोरण से गिरकर मार्ग में हवा के झकोरों से हिल रही है। वह उसे सर्प समझता है। अपने अनूठे अभिनय से दर्शकों को हँसाता है।

समुद्रगृह में जब वह उदयन को कहानी सुनाने लगता है तब वह भूल करता है—'नगर ब्रह्मदत्त, राजा काँपिल्य'। उदयन उसकी भूल को सुधारते हैं। वह उस सुधार को बार-बार रटता है—'राजा ब्रह्मदत्त, नगर काँपिल्य।' उसकी भूल दर्शकों को हँसाती है।

शीत से बचाने के लिए वह अपनी चद्दर लाने जाता है। जब लौटकर आता है तब उदयन उससे कहते हैं कि वासवदत्ता जीवित है। जब वे शय्या पर सो रहे थे, शय्या से लटकते हुए उनके हाथ को वह शय्या पर रखकर कहीं चली गई। विदूषक इस बात को नहीं मानता और कहता है कि मित्र, तुमने अवन्तिसुन्दरी नाम की यक्षिणी को देखा होगा, जो इस नगर में रहती है।

विदूषक को प्रायः भोजनभट्ट कहते हैं। पद्मावती के विवाह पर उसने बहुत खा लिया था; अतः उसके उदर में विकार हो गया। प्रमदवन में भी जब उदयन उससे पूछते हैं कि तुझे कौन अधिक प्रिय है—अब पद्मावती अथवा तब वासवदत्ता? वह उत्तर में कहता है कि उसे पद्मावती अधिक प्रिय है; क्योंकि वह उसे अच्छा भोजन खिलाती है—"स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति।"

नाटकों में प्रायः विदूषक की दुर्दशा को दिखाकर दर्शकों का मनोरंजन किया जाता है। इस नाटक में भी उसकी दुर्दशा के कई उदाहरण मिलते हैं। प्रमदवन में धूप से बचने के लिए जब उदयन और विदूषक माधवीलता के मंडप में जाना चाहते हैं, तब पद्मावती की दासी मंडप की लता को हिला देती है, जिससे लता पर बैठे हुए भ्रमर विदूषक का पीछा करते हैं। वह चिल्लाता है—"दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि।"

वसंतक एक प्रतिभाशाली व्यक्ति है। प्रमदवन में शेफालिका के गुच्छों में फूल न देखकर वह अनुमान लगाता है कि पद्मावती अवश्य वहाँ आई होगी और उसने शेफालिका के फूल चुने होंगे।

इसी दृश्य में जब उदयन वासवदत्ता की याद में आँसू बहा रहा है, वह उसके लिए मुँह धोने का जल लाने जाता है। मार्ग में पद्मावती से भेंट हो जाने पर वह कहता है कि कास-फूलों की धूलि हवा से प्रेरित होकर उदयन

की आँख में आ गिरी। उनकी आँख से आँसू बहने लगे हैं। उनके लिए मैं मुँह धोने का जल ला रहा हूँ।

वह उदयन को उचित मंत्रणा भी देता है। दर्शक ने एक राजसभा बुलाई है—आरुणि पर आक्रमण करने के संबंध में। विदूषक उदयन से कहता हैं कि हमें स्वयं ही दर्शक के साथ सभा में पहुँचना चाहिए। आमंत्रण की प्रतीक्षा करना ठीक नहीं है। सभा का आयोजन करके दर्शक ने हमारा सम्मान किया है। अच्छा होगा कि हम स्वयं वहाँ पहुँचकर उसका सम्मान करें—"सत्कारो हि सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति।"

प्रतिभाशाली, प्रत्युत्पन्नमति और योग्य परामर्शदाता होने के साथ-साथ वह गंभीर भी है। वासवदत्ता की याद में जब उदयन अत्यंत दुःखित हैं, वह उन्हें धैर्य बँधाता है—'धारयतु धारयतु भवान्।' स्वप्न-दृश्य में जब उदयन नहीं मानते कि वासवदत्ता मर चुकी है तब वह कहता है—'मेदानीमनर्थं चिन्तयित्वा।' जब घोषवती वीणा को देखकर उदयन फिर व्यथित होते हैं तब वह कहता है—'अब आप अधिक संताप न करें।"

इस नाटक में विदूषक को बहुत कम स्थान मिला है। चौथे और पाँचवें अंक में हम उसे उदयन के साथ देखते हैं। छठे अंक के आरम्भ में फिर हम उसे मंच पर देखते हैं। वीणा-दर्शन से संतप्त उदयन को वह धैर्य बँधा रहा है। उदयन उसे कह रहे हैं कि तुम वीणा को कारीगरों से ठीक करा लाओ। विदूषक चला जाता है। उसके संबंध में हम फिर कुछ नहीं सुनते।

वासवदत्ता

वासवदत्ता वत्सराज उदयन की पत्नी थी। वह मालव-देश के नरेश प्रद्योत महासेन की पुत्री थी। भास के प्रतिज्ञायौगन्धरायण से हमें ज्ञात होता है कि उदयन कभी प्रद्योत के बंदी रहे थे। वहाँ उन्होंने वासवदत्ता को संगीत की शिक्षा दी थी। उन दोनों का आपस में प्रेम इतना बढ़ गया कि जब मंत्री यौगन्धरायण ने उदयन को बन्धन से छुड़ाया तब वासवदत्ता उदयन के साथ चली आई।

स्वप्नवासवदत्त में उदयन को उस समय की याद आती है जब वासवदत्ता उदयन के सामने वीणा बजाती हुई अपनी सुध भूल जाती थी और उसका

हाथ वीणा के तारों पर न पड़कर शून्य में ही चलता था।

उदयन के साथ आते समय उसे अपने बन्धुजनों की याद आई। उसकी आँखों में आँसू भर आये, पर उसने आँसुओं को उदयन की छाती पर ही गिराया।

वासवदत्ता के प्रेम में त्याग की भावना थी। उसने पतिहित को ही अपना हित समझा। जब देश का अधिकांश छिन गया, केवल कौशाम्बी बची, तब उसने पति के सम्मान और प्रजा के हित की रक्षा के लिए मन्त्री की योजना को सफल बनाने का भार अपने पर लिया। उसकी दक्षता और त्याग हमारे हृदय में उसके प्रति अतुल श्रद्धा उत्पन्न करते हैं।

गुप्तवास का समय उसकी परीक्षा का काल था। ऐसी दशा में महान् पुरुषों का भी हृदय काँप उठता है। किन्तु नारी होकर भी उसने वह कार्य कर दिखाया, जिसे कुशल पुरुष भी सरलता से नहीं कर सकता। उसने इस लोकोक्ति को पुष्ट किया कि प्रेम स्वयं मार्ग दिखलाता है और त्याग स्वयं न देता है।

उसने आत्माभिमान को कभी नहीं त्यागा, किन्तु बड़ों का सदा आदर किया। तपोवन के आश्रम में जब भट मार्ग से लोगों को हटाने लगे तब उससे नहीं रहा गया। वह बोल उठी—'परिश्रम से वैसा कष्ट नहीं होता जैसा अपमान से होता है।' तो भी पद्मावती के प्रति उसे घृणा नहीं हुई। पद्मावती राजकुमारी थी, उसके प्रति वासवदत्ता के मन में बहिन का-सा स्नेह उमड़ आया। वह उसकी कुलीनता, रूप और मधुर वाणी पर मुग्ध हो गई। जब उसे मालूम हुआ कि उसके पिता प्रद्योत अपने पुत्र गोपालक के लिए उसकी माँग कर रहे हैं तब उसने उसे अपना ही समझा। किन्तु जब दासी से उसे पता चला कि वह उदयन से विवाह करना चाहती है तब उसे आश्चर्य नहीं हुआ। वह पद्मावती की गुणज्ञता पर प्रसन्न हुई।

वासवदत्ता का नारी-हृदय अति कोमल था। उसने कई बार उदयन के दुख में आँसू बहाये। पहले अंक में जब ब्रह्मचारी के मुँह से उसने उदयन की व्यथा सुनी, तब उसकी आँखें आँसुओं से भर गईं। चौथे अंक में भी उदयन को देखकर उसकी वैसी ही दशा हुई। किन्तु ऐसे अवसर इस नाटक में नहीं आए जबकि पद्मावती को उसका व्यवहार बुरा लगा हो। दूसरे अंक में उसने

पद्मावती से हँसी-मजाक भी किया है। पद्मावती गेंद खेल रही है। वासवदत्ता उससे कहती है—'बहिन ! गेंद खेलते-खेलते ललाई के बढ़ जाने से तुम्हारे हाथ मानों पराए हो रहे हैं।' यहाँ 'राग' से 'प्रेम' का अर्थ भी निकलता है और 'परकीय' शब्द से उदयन का भी संकेत होता है। इसी प्रकार 'अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि'—इस वाक्य में वर मुख का अर्थ 'सुन्दर मुख' अथवा 'वर का मुख' दोनों हो सकता है।

अज्ञातवास में रहस्य खुल जाने के कई अवसर आए हैं, किन्तु वासवदत्ता ने अपने अज्ञातवास का रहस्य नहीं खुलने दिया। एक बार तो उसे झूठ भी बोलना पड़ा है। जब लतामण्डप के भीतर से वह उदयन को देखती है और उसकी आँखें आँसुओं से भर जाती हैं तब दासी को आश्चर्य होने लगता है। तब वासवदत्ता उत्तर में कहती है कि भ्रमरों ने कास के फूलों को हिला दिया है। मेरी आँखों में फूलों की धूलि पड़ जाने से पानी भर आया है। इसी प्रकार जब धाय पद्मावती से कहती है कि तुम्हारा उदयन के साथ वाग्दान-सम्बन्ध हो गया तब वासवदत्ता कहती है—बहुत बुरा हुआ। जब धाय उससे पूछती है—क्यों ? तब वह कहती है कि बुरा इसलिए हुआ कि उदयन, जो वासवदत्ता के शोक में अति सन्तप्त थे, अब पद्मावती से विवाह करने को शीघ्र ही तैयार हो गये। उसी दृश्य में जब वह कहती है कि उदयन दर्शनीय है तब पद्मावती उससे पूछती है कि तुम कैसे जानती हो ? वह घबराकर कहती है कि ऐसा उज्जयिनी के लोग कहते हैं। इस प्रकार उसके प्रत्युत्पन्नमति होने के कई उदाहरण इस नाटक में मिलते हैं।

अज्ञातवास में उसे कुछ ऐसे भी अवसर मिले हैं, जब वह अकेले में अपना दुख प्रकट कर सकी है। कैसे मार्मिक हैं उसके ये शब्द—"अहमपि शय्यायां दुःखं विनोदयामि यदि निद्रां लभे।"

दैव की निष्ठुरता पर भी उसने दो आँसू बहाये हैं—'अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः।' किन्तु अज्ञातवास में उसे उदयन का वास्तविक परिचय मिला है जब उदयन स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं कि मुझे पद्मावती की अपेक्षा वासवदत्ता अधिक प्रिय है। अज्ञातवास भी इस प्रकार लाभदायक सिद्ध हुआ है। वह कहती है—'अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते।'

स्वप्न-दृश्य में उदयन अर्धनिद्रा में उससे पूछ रहे हैं—"क्या तुम रुष्ट हो ? यदि रुष्ट नहीं तो गृहने क्यों नहीं पहनी ?"

पद्मावती से ब्याह होने के बाद भी वासवदत्ता के प्रति उदयन के ऐसे उद्‌गार उसके हृदय की दशा के परिचायक तो हैं ही, किन्तु इस बात के भी साक्षी हैं कि वासवदत्ता में कुछ अलौकिक, असाधारण आकर्षक गुण रहे होंगे, जिन्हें भुलाना उदयन के लिए अति दुष्कर था।

अन्त में वासवदत्ता के प्रकट होने पर पद्मावती लज्जित सी होकर वासवदत्ता से क्षमा चाहती है—"मैंने तुम्हारे साथ सखी के समान व्यवहार किया जबकि मुझे गुरुजन के सदृश व्यवहार करना था।" किन्तु वासवदत्ता जानती है कि इसमें पद्मावती का दोष नहीं। उसके प्रति वासवदत्ता का भगिनिका-स्नेह स्थिर रहता है।

पद्मावती

पद्मावती उदयन की पत्नी थी। वह इस नाटक की नायिका है। जब मंत्रियों की योजना के अनुसार वासवदत्ता अज्ञात होकर रहने लगी तब उदयन ने मंत्रियों के कथन पर विश्वास कर वासवदत्ता को ग्रामदाह में दग्ध हुआ समझा। फिर उसने राजा दर्शक की बहिन पद्मावती के साथ ब्याह किया। आरुणि पर विजय पाने के लिए दर्शक से संबंध जोड़ना आवश्यक था। प्राचीन साहित्यकारों के अनुसार उदयन पद्मावती का ब्याह अर्थ-शृंगार कहलाता है।

तो भी पद्मावती में राजकुमारी के सभी आकर्षक गुण मिलते हैं। चौथे अङ्क में जब उदयन पद्मावती की अपेक्षा वासवदत्ता को अधिक महत्त्व देते हैं तब विदूषक पद्मावती को विशेष महत्त्व देता है। "तत्रभवती पद्मावती तरुणी, दर्शनीया, अकोपना, अनहङ्कारा, मधुरवाक्, सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्‌गच्छति कुत्र नु गत आर्यवसन्तक इति।" विदूषक के इस कथन में पद्मावती के सभी गुण आ जाते हैं।

उसके रूपवती होने की पुष्टि वासवदत्ता की उक्ति से भी होती है। पहले अङ्क में जब वासवदत्ता उसे देखती है तब वह मन में कहती है—"अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम्।" उदयन भी उसके रूप की प्रशंसा करते हैं—"रूपवती प्रिया को पाकर आज मेरा शोक मन्द-सा हो गया है।"

रूपवती तो वह है ही, किन्तु साथ ही वह मधुरभाषिणी भी है। जब वह तपोवन में तापसी को सविनय नमन करती है—'आर्ये वन्दे !' तब वासवदत्ता उसकी मधुर वाणी को सराहती है—'नहि रूपमेव वागपि खल्वस्या मधुरा।'

रूपवती और मधुरवाक् होने के साथ-साथ वह उदार भी है। कंचुकी उसे धर्मप्रिया कहता है। वह तपस्वियों को मनचाही वस्तुएँ देकर उन्हें सन्तुष्ट करने में ही अपना कल्याण समझती है। तपोवन में प्रायः प्रार्थी नहीं मिलते, किन्तु जब उसे प्रार्थी मिल जाता है, तब वह अपना तपोवन-आगमन सफल समझती है और जब कंचुकी प्रार्थी यौगन्धरायण की प्रार्थना को नहीं मानता, तब वह उससे कहती है—'आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम्।'

सहानुभूति और संवेदना उसकी नस-नस में भरी है। ब्रह्मचारी जब उदयन की वेदना का वर्णन करते-करते उसकी मूर्च्छा का वर्णन करता है तब वह घबरा जाती है।

मन्त्री यौगन्धरायण वासवदत्ता को आवन्तिका के वेष में धरोहर रखते हैं। पद्मावती धरोहर का पालन-पोषण सावधानी से करती है। उसका व्यवहार सभी के साथ अच्छा है। जब वासवदत्ता उससे मजाक करती है तब उसे बुरा नहीं लगता।

पद्मावती को मालूम है कि उदयन को वासवदत्ता अधिक प्रिय है। यद्यपि उदयन वासवदत्ता की याद में पद्मावती के सामने नहीं रोये, तो भी उसने उन्हें वासवदत्ता की याद में छिपकर रोते हुए देखा है, वासवदत्ता को अधिक गौरव देते हुए छिपकर सुना है। वह रुष्ट नहीं हुई। वह इसमें भी उदयन का बड़प्पन देखती है।

वासवदत्ता की स्मृति में उदयन रो रहे हैं। विदूषक मुंह धोने के लिए जल ला रहा है। पद्मावती को यह सब मालूम है तो भी जब विदूषक उससे कहता है कि कास फूलों की धूलि उदयन की आँख में पड़ गई है, मैं उनके लिए मुखोदक ला रहा हूँ, तब पद्मावती को बुरा नहीं लगता। वह कहती है—'अहो सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति।'

उसका स्वभाव अति सरल है। वह जिसे अपना समझती है, उस पर पूरा विश्वास करती है, चाहे वह व्यक्ति उससे कपट ही क्यों न कर रहा हो। उदयन को देखकर वासवदत्ता की आँखें आंसुओं से भर जाती हैं। वासवदत्ता उसका यथार्थ कारण पद्मावती से छिपाना चाहती है और कहती है कि कास-पुष्प की धूलि के पड़ने से मेरी आँखें आँसू से भर गई हैं। पद्मावती को उसके असत्य भाषण पर कुछ भी सन्देह नहीं होता।

पद्मावती शिरोवेदना से पीड़ित है। इससे न केवल उदयन, बल्कि वासव-दत्ता भी चिन्तित है। उसके सरल स्वभाव पर उसका सम्पूर्ण परिवार मुग्ध है। जब महासेन प्रद्योत, कंचुकी और धाय को उदयन के पास भेजते हैं और उदयन पद्मावती से कहता है—'क्या तुमने सुना कि महासेन ने कंचुकी और धाय को भेजा है', तब पद्मावती कहती है कि 'मुझे अपने बंधुओं का ल-वृत्तान्त सुनना अच्छा लगता है।' तो भी वह सन्देश सुनने के समय दयन के पास ठहरना नहीं चाहती। किन्तु उदयन उसे अपने पास ही बिठाते हैं।

महासेन का सन्देश क्या होगा ?—इसके बारे में वह उदयन से कम उद्विग्न नहीं है।

वासवदत्ता के चित्र को देखकर उसे एक साथ हर्ष और उद्वेग होते हैं। सम्भवत: उद्वेग इसलिए कि यदि आवन्तिका ही वासवदत्ता है तब उसने उसके साथ साधारण सखी-जैसा व्यवहार किया, जो उचित नहीं था। वासव-दत्ता के प्रकट होने पर वह सिर झुकाकर क्षमा माँगती है। उसकी सरलता से प्रभावित होकर उदयन वासवदत्ता के पुनर्मिलन पर भी उसे नहीं भूलते। वे जब महासेन से मिलने जाते हैं, पद्मावती को भी साथ ले जाते हैं।

———

श्रीभासविरचितं

स्वप्नवासवदत्तम्

प्रथमोऽङ्कः

(नान्द्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः)

सूत्रधारः—

उदयनवेन्दुसवर्णावासवदत्ताबलौ बलस्य त्वाम् ।
पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकम्रौ भुजौ पाताम् ॥१॥

उदयकालिकः यः नवः नूतनः इन्दुः चन्द्रः तेन समानः वर्णः ययोः तौ । आसवेन मद्येन दत्तम् अर्पितम् आसमन्तात् बलं सामर्थ्यं (यद्वा अबलं बलाभावः) याभ्यां तौ । पद्मायाः लक्ष्म्याः अवतीर्णेन अवतारेण (भावे क्तः), यद्वा पद्मस्य कमलस्य अवतीर्णः अवतारः तेन, पूर्णौ समृद्धौ । वसन्तः मधुमासः तद्वत् कम्रौ कमनीयौ । बलस्य बलभद्रस्य । भुजौ बाहू । त्वां युष्मान् सभ्यानित्यर्थः । पातां रक्षताम् ।

अत्र उदयन-वासवदत्ता-पद्मावती-वसन्तकानां प्रधानपात्राणां नामनिर्देशेन मुद्रालंकारः । तल्लक्षणं यथा—सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः ॥१॥

(नान्दी के अनन्तर सूत्रधार का प्रवेश)

सूत्रधार—

नवोदित चन्द्रमा के समान उज्ज्वल (उदयनवेन्दुसवर्णौ), मदिरापान से सबल (आसवदत्ताबलौ), कमल के सदृश कोमल (पद्मावतीर्णपूर्णौ), वसन्त-ऋतु के तुल्य सुन्दर (वसन्तकम्रौ) बलराम की भुजाएँ (बलस्य भुजौ) आपकी रक्षा करें (त्वां पाताम्) ॥१॥*

---

* यहाँ पर 'आसवदत्ताबलौ' का विग्रह इस प्रकार होगा—आसवेन दत्तम् आसमन्ताद् बलं याभ्यां तौ । 'आसवदत्ताबलौ' का अन्य अर्थ भी हो सकता है—'मदिरापान से दुर्बल' । इस पक्ष में 'आसवदत्तांबलौ' का विग्रह इस प्रकार होगा—आसवेन दत्तम् अबलं याभ्यां तौ ।

'पद्मावतीर्णपूर्णौ' के भी दो अर्थ सम्भव हैं—(१) पद्मस्य अवतीर्णेन पूर्णौ—कमल की अवतीर्ण शोभा वा कोमलता से पूर्ण अर्थात् कमलतुल्य कोमल, अथवा (२) पद्मायाः अवतीर्णेन पूर्णौ—लक्ष्मी की शोभा से युक्त ।

एवमार्यमिश्रान् विज्ञापयामि । अये ! किन्नु खलु मयि विज्ञापनव्यग्रे शब्द इव श्रूयते ? अज्ञ ! पश्यामि ।

(नेपथ्ये)

उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत]

सूत्रधारः—भवतु, विज्ञातम् ।

भृत्यैर्मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः ।
धृष्टमुत्सार्यते सर्वस्तपोवनगतो जनः ॥२॥

(निष्क्रान्तः)

स्थापना ।

मगधराजस्य (समासान्तष्टच्) मगधाधीशस्य दर्शकस्य । स्निग्धैः स्नेहपूर्णैः । कन्यां कुमारीं पद्मावतीमिति यावत् अनुगन्तुं सेवितुं शीलं येषां तैः । भृत्यैः सेवकैः । तपोवनगतः तपःसाधनं वनं तपोवनं (मध्यमपदलोपिकर्म०) तद् गतः (द्वितीया श्रितेति तत्पुरुषः) । सर्वः सकलः । जनः लोकः । धृष्टं बलात् । उत्सार्यते दूरीक्रियते ॥२॥

आपलोगों से मेरा यह निवेदन है—अये ! ज्योंही मैं आपलोगों से कुछ कहने लगा, यह कैसी आवाज कान में आ पड़ी ? अच्छा, देखता हूँ ।

(नेपथ्य में)

हटो, हटो; लोगो, हटो ।

सूत्रधार—अच्छा, समझ में आ गया ।

मगधराज के (मगधराजस्य) स्नेही (स्निग्धैः) सेवक (भृत्यैः), जो कि राजपुत्री की सेवा के लिए साथ आए हैं (कन्यानुगामिभिः), तपोवन के सभी लोगों को (सर्वः तपोवनगतः जनः) उद्दंडता से(धृष्टम्)हटा रहे हैं (उत्सार्यते) ॥२॥

(सूत्रधार चला जाता है)

(प्रस्तावना समाप्त)

(प्रविश्य)

भटौ—उस्सरह उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतोत्सरतार्याः ! उत्सरत]

(ततः प्रविशति परिव्राजकवेषो यौगन्धरायण आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च)

यौगन्धरायणः—(कर्णं दत्वा) कथमिहाप्युत्सार्यते ?

कुतः—

धीरस्याश्रमसंश्रितस्य वसतस्तुष्टस्य वन्यैः फलै-
र्मानार्हस्य जनस्य वल्कलवतस्त्रासः समुत्पाद्यते ।
उत्सिक्तो विनयादपेतपुरुषो भाग्यैश्चलैर्विस्मितः
कोऽयं भो निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया ॥३॥

धीरस्य धैर्ययुक्तस्य । आश्रमं तपोवनं संश्रितस्य आश्रितस्य । वसतः वासं कुर्वतः । वन्यैः वने भवैः । फलैः आम्रादिभिः । तुष्टस्य सन्तोषं प्राप्तस्य । मानार्हस्य मानमर्हतीति मानार्हस्तस्य आदरणीयस्य । वल्कलवतः चीर-वाससः । जनस्य लोकस्य । त्रासः भयम् । समुत्पाद्यते जन्यते । भोः इत्यनादरे । उत्सिक्तः उद्धतः । विनयात् सौजन्यात् । अपेतपुरुषः अपेताः रहिताः पुरुषाः यस्य सः । चलैः अस्थिरैः । भाग्यैः भागधेयैः । विस्मितः गर्वितः । अयं कः पुरुषः । इदं पुरोवर्ति । निभृतं शान्तम् । तपोवनम् आश्रमस्थानम् । आज्ञया उत्सारणादेशेन । ग्रामीकरोति (अभूततद्भावे च्विः) ग्रामसमतां नयति ॥३॥

(प्रवेश करके)

सिपाही—हटो, हटो; लोगो, हटो ।

(संन्यासी के वेष में यौगन्धरायण और अवन्तिदेश की नारी के वेष में वासवदत्ता का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(कान लगा कर) क्या यहाँ भी लोगों को हटाया जा रहा है ?

तपोवन में रहने वाले (वसतः), वानप्रस्थ अथवा संन्यासी (आश्रम-संश्रितस्य), वन के फलों से सन्तुष्ट (वन्यैः फलैः तुष्टस्य), सम्मानयोग्य

वासवदत्ता—अय्य ! को एसो उस्सारेदि ? [आर्य ! क एष उत्सारयति ?]

यौगन्धरायणः—भवति ! यो धर्मादात्मानमुत्सारयति ।

वासवदत्ता—अय्य ! णहि एव्वं वत्तुकामा, अहंवि णाम उस्सारइदव्वा होमित्ति ।[आर्य ! नह्येवं वक्तुकामा, अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।]

यौगन्धरायणः—भवति ! एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यप्यवधूयन्ते ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह परिस्समो परिखेदं ण उप्पादेदि जह अय्यं परिभवो । [आर्य ! तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथायं परिभवः]

यौगन्धरायणः—भुक्तोज्झित एष विषयोऽत्रभवत्या, नात्र चिन्ता कार्या । कुतः—

(मानार्हस्य), वल्कलधारी (वल्कलवतः) धैर्यशील मनुष्य को (धीरस्य जनस्य) क्योंकर (कुतः) डराया जा रहा है (त्रासः समुत्पाद्यते) ? अहो ! कौन है यह (भोः कोऽयम्) घमंडी पुरुष (उत्सिक्तः), जिसके सेवक उद्दंड हैं (विनयात् अपेतपुरुषः), जो चंचल धनवैभव से गर्वित होकर (चलैः भाग्यैः विस्मितः) इस शान्त तपोवन को (इदं निभृतं तपोवनम्) (अपने) आदेश से (आज्ञया) गाँव-सा बना रहा है (ग्रामीकरोति) ? ॥३॥

वासवदत्ता—आर्य ! यह कौन हटा रहा है ?

यौगन्धरायण—आर्ये ! जो अपने को धर्म से हटा रहा है ।

वासवदत्ता—आर्य ! मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं । मैं पूछती हूँ—क्या मैं भी हटाई जाऊँगी ?

यौगन्धरायण—इस प्रकार अनजाने देवताओं का भी तिरस्कार हो जाता है ।

वासवदत्ता—आर्य ! परिश्रम मुझे वैसा कष्ट नहीं देता जैसा कि यह अपमान ।

यौगन्धरायण—आपने भी इस प्रकार को पहले अपनाया था, अब त्याग दिया । इसकी चिन्ता करना व्यर्थ है । क्योंकि—

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासी-
च्छ्लाघ्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्त्तुः ।
कालक्रमेण जगतः परिवर्त्तमाना
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः ॥४॥

भटौ—उस्सरह अय्या ! उस्सरह । [उत्सरतार्याः ! उत्सरत]

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—सम्भषक ! न खलु न खलूत्सारणा कार्या । पश्य—

पूर्वं पुरा । त्वयापि भवत्यापि । एवम् ईदृशम् । अभिमतम् इष्टम् । गतं प्रस्थितम् । आसीत् । पुनः भूयः । भर्तुः पत्युः । विजयेन राज्यप्राप्ति-लक्षणेन । श्लाघ्यं प्रशंसनीयं यथा स्यात्तथा । गमिष्यसि यास्यसि । कालक्रमेण अनुकूलप्रतिकूलकालानुसारेण । परिवर्तमाना भ्रमन्ती । जगतः लोकस्य । भाग्यपङ्क्तिः दैवपरम्परा । चक्रस्य रथाङ्गस्य अराणां नेमिकाष्ठानां पङ्क्तिरिव श्रेणिरिव गच्छति । यथा चक्रारपङ्क्तिः उपरि अधश्च गच्छति तथैव लोकस्य शुभाशुभानि भाग्यानि समयक्रमेण परिवर्तन्ते । तथा हि—नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥४॥

आपको भी (त्वया अपि) पहले (पूर्वम्) इस प्रकार चलना (एवं गतम्) अभीष्ट था (अभिमतम् आसीत्) । पति की विजय होने पर (भर्त्तुः विजयेन) आप फिर (पुनः) (उसी प्रकार) गौरव से चलोगी (श्लाघ्यं गमिष्यसि) । समय के बदलने से (कालक्रमेण) बदलनेवाली (परिवर्त्तमाना) संसार की भाग्यरेखा (जगतः भाग्यपङ्क्तिः) पहिये के अरों की भाँति (चक्रारपङ्क्तिः इव) चलती है (गच्छति) ॥४॥

सिपाही—हटो, लोगो, हटो ।

(कंचुकी का प्रवेश)

कञ्चुकी—संभषक ! हटाओ नहीं, हटाओ नहीं, देखो—

परिहरतु भवान् नृपापवादं
न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम् ।
नगरपरिभवान् विमोक्तुमेते
वनमभिगम्य मनस्विनो वसन्ति ॥५॥

उभौ—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा]

(निष्क्रान्तौ)

यौगन्धरायणः—हन्त ! सविज्ञानमस्य दर्शनम् । वत्से ! उपसर्पावस्तावदेनम् ।

वासवदत्ता—अय्य ! तह । [आर्य ! तथा]

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) भोः ! किङ्कृतेयमुत्सारणा ?

काञ्चुकीयः—भोस्तपस्विन् !

भवान् । नृपस्य राज्ञः दर्शकस्य अपवादं निन्दां परिहरतु वर्जयतु । आश्रमवासिषु तपस्विषु विषये भवता परुषं निष्ठुरं न प्रयोज्यं न प्रयोक्तव्यम् । मनस्विनः शान्तचित्ताः । एते तापसाः । नगरपरिभवान् नगरसुलभान् अनादरान् । विमोक्तुं परिहर्तुम् । वनम् अरण्यम् । अभिगम्य आगत्य । वसन्ति श्रयन्ते ॥५॥

आप (भवान्) राजा की निंदा (नृपापवादं) न होने दें (परिहरतु) । आश्रमवासियों के साथ (आश्रमवासिषु) कठोर व्यवहार (परुषम्) नहीं करना चाहिए (न प्रयोज्यम्) । ये सदाचारी लोग (एते मनस्विनः) नगर के अपमानों से बचने के लिए ही (नगरपरिभवान् विमोक्तुम्) वन में आकर (वनम् अभिगम्य) रहते हैं (वसन्ति) ॥५॥

दोनों—आर्य ! अच्छा । (दोनों चले जाते हैं)

यौगन्धरायण—अहा ! (कैसे) अच्छे हैं इसके विचार ! बेटी ! चलो इसके पास चलें ।

वासवदत्ता—आर्य ! अच्छा ।

यौगन्धरायण—(पास जाकर) लोगों को क्यों हटाया जा रहा है ?

कंचुकी—तापस !

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) तपस्विन्निति गुणवान् खल्वयमालापः। अपरिचयात्तु न श्लिष्यते मे मनसि।

काञ्चुकीयः—भोः! श्रूयताम्। एषा खलु गुरुभिरभिहितनामधेयस्यास्माकं महाराजदर्शकस्य भगिनी पद्मावती नाम। सैषा नो महाराजमातरं महादेवीमाश्रमस्थामभिगम्यानुज्ञाता तत्रभवत्या राजगृहमेव यास्यति। तदद्यास्मिन्नाश्रमपदे वासोऽभिप्रेतोऽस्याः। तद् भवन्तः—

तीर्थोदकानि समिधः कुसुमानि दर्भान्
स्वैरं वनादुपनयन्तु तपोधनानि।
धर्मप्रिया नृपसुता नहि धर्मपीडा-
मिच्छेत् तपस्विषु कुलव्रतमेतदस्याः ॥६॥

तीर्थोदकानि तीर्थस्य पवित्रस्य जलाशयस्य उदकानि जलानि। समिधः काष्ठानि। कुसुमानि पुष्पाणि। दर्भान् कुशान्। (इमानि) तपोधनानि तपस्साधनानि। स्वैरं स्वेच्छया। वनात् अरण्यात्। उपनयन्तु आनयन्तु। हि यतः। धर्मप्रिया धर्मानुरागिणी। नृपसुता राजपुत्री पद्मावती। तपस्विषु तपोधनेषु। धर्मपीडां धर्मबाधाम्। न इच्छेत् न वाञ्छेत्। एतत् धर्माचरणम्। अस्याः राजसुतायाः। कुलव्रतं वंशाचरणम्। अस्तीति शेषः ॥६॥

यौगन्धरायण—(मन में) 'तापस' शब्द से आमंत्रण करना प्रशंसा प्रकट करता है, किन्तु ऐसा आमंत्रण कभी पहले किसी ने नहीं किया, अतः मुझे अच्छा नहीं लगता।

कंचुकी—सुनिए। यह हमारे महाराज दर्शक की, जिनका 'दर्शक' नाम गुरुजनों ने (यथार्थ ही) रखा है, बहन पद्मावती है। यह हमारे महाराज की वानप्रस्थी माता महादेवी से मिलकर फिर उनकी आज्ञा पाकर राजगृह को ही लौट रही हैं। तो आज यह इसी आश्रम में रहना चाहती हैं। अतः आप—

तीर्थजल (तीर्थोदकानि), लकड़ी (समिधः), फूल (कुसुमानि) और कुश आदि (दर्भान्) तपस्या की सामग्री को (तपोधनानि) यथेष्ट (स्वैरम्) वन से ले आवें (वनाद् उपनयन्तु)। राजकुमारी (नृपसुता) धर्मप्रिया है। यह

यौगन्धरायणः—(स्वगतम्) एवम् ! एषा सा मगधराजपुत्री पद्मावती नाम, या पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति। ततः—

प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते।
भर्तृदाराभिलाषित्वादस्यां मे महती स्वता ॥७॥

वासवदत्ता—(स्वगतम्) राअदारिअत्ति सुणिअ भइणिआसिणेहो वि मे एत्थ संपज्जइ। [राजदारिकेति श्रुत्वा भगिनिकास्नेहोऽपि मेऽत्र सम्पद्यते]

(ततः प्रविशति पद्मावती सपरिवारा चेटी च)

प्रद्वेषः वैरम्। बहुमानः अत्यादरः। वा। संकल्पात् मनोव्यापारात्। उपजायते उद्भवति। भर्तुः स्वामिनः दाराः भार्या इति भर्तृदाराः (दारशब्दः पुंसि बहुवचने च प्रयुज्यते) तान् अभिलषतीति भर्तृदारालाषी तस्य भावः तस्मात्। मे मम यौगन्धरायणस्य। अस्यां पद्मावत्याम्। महती अनल्पा। स्वता आत्मीयबुद्धिः। अस्तीति शेषः ॥७॥

तपस्वियों के धर्मकार्य में विघ्न (तपस्विषु धर्मपीडाम्) नहीं डालना चाहती (नहि इच्छेत्)। यह (एतत्) इसके (अस्याः) कुल का नियम है (कुलव्रतम्) ॥६॥

यौगन्धरायण—(मन में) ऐसा ! यह वही मगध की राजकुमारी पद्मावती है, जो पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों के कथनानुसार महाराज उदयन की रानी बनेगी। क्योंकि—

वैर (प्रद्वेषः) अथवा सम्मान (बहुमानो वा) मन की भावना से होता है (संकल्पादुपजायते)। क्योंकि मैं चाहता हूँ कि यह हमारे स्वामी की पत्नी बने अतः (भर्तृदाराभिलाषित्वाद्) इसके प्रति (अस्यां) मेरे मन में आत्मीयता की भावना हो रही है (मे महती स्वता) ॥७॥

वासवदत्ता—(मन में) 'पद्मावती राजकुमारी है' यह सुनकर मेरा इस के प्रति बहन का-सा स्नेह भी हो रहा है।

(सखियों-सहित पद्मावती तथा उसकी दासी का प्रवेश)

चेटी—एदु एदु भट्टिदारिआ, इदं अस्समपदं पविसदु । [एत्वेतु भर्तृदारिका, इदमाश्रमपदं प्रविशतु]

(ततः प्रविशत्युपविष्टा तापसी)

तापसी—साअदं राअदारिआए । [स्वागतं राजदारिकायै]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) इअं सा राअदारिआ । अभिजणाणुरूवं खु से रूवं । [इयं सा राजदारिका । अभिजनानुरूपं खल्वस्या रूपम् ।]

पद्मावती—अय्ये ! वंदामि । [आर्ये ! वन्दे]

तापसी—चिरं जीव । पविस जादे ! तवोवणाणि णाम अदिहिजणस्स सअगेहं । [चिरं जीव । प्रविश जाते ! तपोवनानि नामातिथिजनस्य स्वगेहम्]

पद्मावती—भोदु भोदु । अय्ये ! विस्सत्थम्हि । इमिणा बहुमाणवअणेण अणुग्गहिदम्हि । [भवतु भवतु । आर्ये ! विश्वस्तास्मि । अनेन बहुमानवचनेनानुगृहीतास्मि]

वासवदत्ता—(स्वगतम्) णहि रूवं एव्व, वाआ वि खु से महुरा । [नहि रूपमेव, वागपि खल्वस्या मधुरा]

तापसी—भद्दे ! इमं दाव भद्दमुहस्स भइणिअं कोच्चि राआ ण वरेदि ? [भद्रे ! इमां तावद् भद्रमुखस्य भगिनिकां कश्चिद् राजा न वरयति ?]

दासी—आइए, राजकुमारी जी, आइए । इस आश्रम में प्रवेश कीजिए ।

(बैठी हुई तापसी का प्रवेश)

तापसी—राजकुमारी ! आपका स्वागत है ।

वासवदत्ता—(मन में) यह वही राजकुमारी है । ठीक इसका रूप उच्च कुल के अनुरूप है ।

पद्मावती—आर्ये ! मैं आपको प्रणाम करती हूँ ।

तापसी—चिरकाल तक जीओ, वत्से ! आओ, तपोवन तो अतिथियों का अपना ही घर है ।

पद्मावती—अच्छा, आर्ये ! मैं निश्चिन्त हो गई । आपके इस आदर-वचन से मैं कृतकृत्य हो गई ।

वासवदत्ता—(मन में) केवल रूप ही नहीं, इसकी वाणी भी मधुर है ।

तापसी—भद्रे ! क्या कोई राजा हमारे भद्रमुख राजा की इस बहन की माँग नहीं करता ?

चेटी—अत्थि राआ पज्जोदो णाम उज्जइणीए। सो दारअस्स कारणादो दूदसम्पादं करेदि। [अस्ति राजा प्रद्योतो नामोज्जयिन्याः। स दारकस्य कारणाद् दूतसम्पातं करोति]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु। एसा अ अत्तणीया दाणिं संवुत्ता। [भवतु भवतु। एषा चात्मीयेदानीं संवृत्ता।]

तापसी—अर्हा खु इअं आइदी इमस्स बहुमाणस्स। उभआणि राअउलाणि महत्तराणि त्ति सुणीअदि। [अर्हा खल्वियमाकृतिरस्य बहुमानस्य। उभे राजकुले महत्तरे इति श्रूयते।]

पद्मावती—अय्य! किं दिट्ठो मुणिजणो अत्ताणं अणुग्गहीदुं। अभिप्पेदप्पदाणेण तवस्सिजणो उवणिमंतीअदु दाव को किं एत्थ इच्छदित्ति। [आर्य! किं दृष्टो मुनिजन आत्मानमनुग्रहीतुम्? अभिप्रेतप्रदानेन तपस्विजन उपनिमन्त्र्यतां तावत् कः किमत्रेच्छतीति।]

काञ्चुकीयः—यदभिप्रेतं भवत्या। भो भोः आश्रमवासिनस्तपस्विनः! शृण्वन्तु शृण्वन्तु भवन्तः, इहात्रभवती मगधराजपुत्री अनेन विस्रम्भेणोत्पादितविस्रम्भा धर्मार्थमर्थेनोपनिमन्त्रयते।

दासी—उज्जयिनी का राजा प्रद्योत है। उसने अपने पुत्र के लिए दूत भेजा है।

वासवदत्ता—(मन में) यह तो अब मेरी अपनी हो गई।

तापसी—सचमुच यह आकृति इस सम्मान के योग्य ही है। सुना जाता है कि दोनों राजकुल बड़े ऊँचे हैं।

पद्मावती—आर्य! क्या कोई ऐसा मुनि मिला है, जो (कुछ वस्तु लेकर) हमें अनुगृहीत करे। जो वस्तु उन्हें चाहिए, वह मिलेगी, ऐसा कहकर मुनियों से पूछो कि कौन-सी वस्तु किसे चाहिए।

कञ्चुकी—जैसा आप चाहती हैं, वैसा ही होगा। आश्रमवासी मुनियो! आप सुन लें कि यह मगधराजकुमारी आपके द्वारा किये गये अभिनन्दन से प्रोत्साहित होकर धर्मलाभ के लिए आपको दान देने के लिए आमन्त्रित करती है—

कस्यार्थः कलशेन को मृगयते वासो यथानिश्चितं
दीक्षां पारितवान् किमिच्छति पुनर्देयं गुरोर्यद् भवेत् ।
आत्मानुग्रहमिच्छतीह नृपजा धर्माभिरामप्रिया
यद्यस्यास्ति समीप्सितं वदतु तत् कस्याद्य किं दीयताम् ॥८॥

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) हन्त ! दृष्ट उपायः । (प्रकाशम्) भोः ! अहमर्थी ।

पद्मावती—दिट्ठिआ सहलं मे तपोवणाभिगमणं । [दिष्ट्या सफलं मे तपोवनाभिगमनम् ।]

कस्य तापसस्य । कलशेन घटेन । अर्थः प्रयोजनम् । कः तापसः । वासः वस्त्रम् । मृगयते वाञ्छति । कः तापसः । यथानिश्चितम् यथाध्यवसितम् । दीक्षाम् अध्ययनं शिक्षामितियावत् । पारितवान् समापितवान् । पुनः भूयः । किं वस्तु । इच्छति ईहते । यत् वस्तु । गुरोः आचार्यस्य । देयं दक्षिणात्वेन दातव्यम् । भवेत् स्यात् । इह अस्मिन् आश्रमे । धर्मे अभिरामः अभिरुचिः येषां ते धर्माभिरामाः धर्मानुरागिणः, ते प्रियाः यस्याः सा, यद्वा धर्मोऽभिरामः प्रियश्च यस्याः सा । नृपजा राजसुता । आत्मानुग्रहं स्वधन्यताम् । इच्छति अभिलषति । यस्य तपस्विनः । यत् वस्तु । समीप्सितम् अभीष्टम् । अस्ति वर्तते । सः तापसः । तद् वस्तु । वदतु कथयतु । अद्य अस्मिन् दिवसे काले वा । कस्य तपस्विनः । किं वस्तु । दीयतां समर्प्यताम् । तदुच्यतामिति शेषः ॥८॥

किसे (कस्य) कलश चाहिए (कलशेन अर्थः) ? कौन (कः) वस्त्र चाहता है (वासः मृगयते)? किसने अपनी निश्चित (यथानिश्चितं) शिक्षा को समाप्त किया है (दीक्षां पारितवान्) ? वह क्या चाहता है (पुनः किम् इच्छति) जो उसे गुरुदेव को देना है (यद् गुरोः देयं भवेत्) ? धार्मिक जनों में श्रद्धालु राजकुमारी (धर्माभिरामप्रिया नृपजा) इस आश्रम में (इह) अपना कल्याण (आत्मानुग्रहम्) चाहती है (इच्छति) । जो वस्तु (यद्) जिसे (यस्य) चाहिए (समीप्सितम् अस्ति) वह कहे (तत् वदतु), किसे (कस्य) आज (अद्य) क्या दिया जाय (किं दीयताम्) ? ॥८॥

यौगन्धरायण—(मन में) अहा ! मुझे अच्छा उपाय सूझा । (प्रकट) अजी ! मैं प्रार्थी हूँ ।

पद्मावती—मैं कृतार्थ हुई । तपोवन में मेरा आना सफल हुआ ।

तापसी—संतुट्ठतवस्सिजणं इदं अस्समपदं । आअंतुएण इमिणा होदव्वं । [सन्तुष्टतपस्विजनमिदमाश्रमपदम् । आगन्तुकेनानेन भवितव्यम् ।]

काञ्चुकीयः—भोः किं क्रियताम् ?

यौगन्धरायणः—इयं मे स्वसा । प्रोषितभर्तृकामिमामिच्छाम्यत्रभवत्या कञ्चित् कालं परिपाल्यमानाम् । कुतः—

कार्यं नैवार्थैर्नापि भोगैर्न वस्त्रै-
र्नाहं काषायं वृत्तिहेतोः प्रपन्नः ।
धीरा कन्येयं दृष्टधर्मप्रचारा
शक्ता चारित्रं रक्षितुं मे भगिन्याः ॥९॥

(मम) अर्थैः धनैः । कार्यं प्रयोजनम् । नैव नास्ति । भोगैः भोग-साधनैः द्रव्यविशेषैः । अपि कार्यं न । वस्त्रैः वसनैः । अपि कार्यं न । अहं यौगन्धरायणः । वृत्तिहेतोः जीविकार्थम् । काषायं कषायेण रक्तं गैरिकं वस्त्रं परिव्राजकवेषम् इत्यर्थः । न प्रपन्नः नाङ्गीकृतवान् । धीरा पण्डिता मनस्विनी च । दृष्टः अवगतः धर्मस्य प्रचारः आचरणं यया सा । इयं पुरोवर्तिनी । कन्या मगधराजपुत्री । मे मम । भगिन्याः स्वसुः । चारित्रं शीलम् । रक्षितुं पातुम् । शक्ता समर्था ॥९॥

तापसी—इस आश्रम में तो सब तापस सन्तुष्ट हैं ? यह कोई बाहर से आया होगा ।

कञ्चुकी—तो तुम्हें क्या चाहिए ?

यौगन्धरायण—यह मेरी बहन है । इसका पति परदेश में गया है । मैं चाहता हूँ कि कुछ समय के लिए आप इसे अपनी देखरेख में रखें । क्योंकि—

मुझे न धन से प्रयोजन है (अर्थैः नैव कार्यम्), न भोग्य वस्तुओं से (नापि भोगैः), न वस्त्रों से (न वस्त्रैः) । जीविका के लिए (वृत्तिहेतोः) मैंने गेरुआ वस्त्र (अहम् काषायम्) नहीं पहना है (न प्रपन्नः) । यह राजकन्या (इयं कन्या) धीर स्वभाव की है (धीरा) । इसकी धर्मख्याति से हम परिचित हैं (दृष्टधर्मप्रचारा) । यह मेरी बहन के चरित्र की (मे भगिन्याः चारित्रं) रक्षा कर सकती है (रक्षितुं शक्ता) ॥९॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, इह मं णिक्खिविदुकामो अय्ययोगंधरायणो ! होदु, अविआरिअ कमं ण करिस्सदि । [हम्, इह मां निक्षेप्तुकाम आर्ययौगन्धरायणः ! भवतु, अविचार्य क्रमं न करिष्यति ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! महती खल्वस्य व्यपाश्रयणा । कथं प्रतिजानीमः ? कुतः—

सुखमर्थो भवेद् दातुं सुखं प्राणाः सुखं तपः ।
सुखमन्यद् भवेत्सर्वं दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ॥१०॥

पद्मावती—अय्य ! पढमं उग्घोसिअ को किं इच्छदित्ति अजुत्त दारिणं विआरिदुं । जं एसो भणादि, तं अणुचिट्ठदु अय्यो । [आर्य ! प्रथममुद्घोष्य कः किमिच्छतीत्ययुक्तमिदानीं विचारयितुम् । यदेष भणति तदनुतिष्ठत्वार्यः ।]

काञ्चुकीयः—अनुरूपमेतद् भवत्याभिहितम् ।

अर्थः द्रव्यम् । दातुम् अर्पयितुम् । सुखं सुकरम् । भवेत् स्यात् । प्राणासवः दातुम् अर्पयितुं सुखं सुकरम् । तपः तपःफलं दातुम् अर्पयितुम् सुखं सुकरम् । अन्यत् इतरत् । सर्वं सकलम् । दातुम् अर्पयितुम् सुखं सुकरम् । भवेत् स्यात् । परं न्यासस्य निक्षेपस्य । रक्षणं परिपालनम् । दुःखं दुष्करम् ॥१०॥

वासवदत्ता—(मन में) आर्य यौगन्धरायण मुझे यहीं सौंपना चाहते हैं ! अच्छा, वे बिना सोचे कोई काम न करेंगे ।

कञ्चुकी—इसकी यह आश्रय-प्रार्थना बहुत बड़ी है; कैसे मान लें ? क्योंकि—

धन (अर्थः), प्राण (प्राणाः) और तप का फल (तपः) देना सरल है (दातुं सुखम्) । अन्य सब कुछ देना सरल है (अन्यत् सर्वं सुखं भवेत्) । किन्तु धरोहर की रक्षा करना (न्यासस्य रक्षणं) बहुत कठिन है (दुःखम्) ॥१०॥

पद्मावती—आर्य ! किसे क्या चाहिए—पहले ऐसी घोषणा करके अब पीछे हटना उचित नहीं है । जो यह कहे वैसा करना होगा ।

कञ्चुकी—आपने यह ठीक कहा ।

चेटी—चिरं जीवतु भट्टिदारिआ एवं सच्चवादिणी। चिरं जीवतु भर्तृदारिका एवं सत्यवादिनी]

तापसी—चिरं जीवदु भद्दे ! [चिरं जीवतु भद्रे !]

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा। (उपगम्य) भोः ! अभ्युपगतमत्रभवता भगिन्याः परिपालनमत्रभवत्या।

यौगन्धरायणः—अनुगृहीतोऽस्मि तत्रभवत्या। वत्से ! उपसर्पात्रभवतीम्।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) का गई। एसा गच्छामि मंदभाआ [का गतिः ? एषा गच्छामि मन्दभागा]

पद्मावती—भोदु भोदु। अत्तणीआ दाणिं संवुत्ता। [भवतु भवतु। आत्मीयेदानीं संवृत्ता।]

तापसी—जा ईदिसी से आइदी, इयं वि राअदारिअत्ति तक्केमि। [या ईदृश्यस्या आकृतिः, इयमपि राजदारिकेति तर्कयामि]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि। अहं वि अणुहूदसुहत्ति पेक्खामि [सुष्ठु आर्या भणति। अहमप्यनुभूतसुखेति प्रेक्षे।]

दासी—ऐसी सत्यवक्ता राजकुमारी चिरकाल तक जीवित रहें।

तापसी—भद्रे ! चिरकाल तक जिओ।

कञ्चुकी—राजकुमारी ! अच्छा। (यौगन्धरायण के पास जाकर) श्रीमन्, श्रीमती ने आपकी बहन की देखभाल करना मान लिया है।

यौगन्धरायण—श्रीमती ने मुझ पर बड़ी कृपा की है। बेटी ! इनके पास जाओ।

वासवदत्ता—(मन में) क्या करूँ ? मैं अभागिनी अब जाती हूँ।

पद्मावती—अच्छा, अब यह अपनी हो गईं।

तापसी—इसकी जैसी आकृति है इससे मैं समझती हूँ कि यह भी राजकुमारी है।

दासी—आप ठीक कह रही हैं। मैं भी समझती हूँ कि इसने सुख भोगे हैं।

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) हन्त भोः ! अर्धमवसितं भारस्य । यथा मन्त्रिभिः सह समर्थित तथा परिणमति । ततः प्रतिष्ठिते स्वामिनि तत्रभवतीमुपनयतो मे इहात्रभवती मगधराजपुत्री विश्वासस्थानं भविष्यति । कुतः—

पद्मावती नरपतेर्महिषी भवित्री
दृष्टा विपत्तिरथ यैः प्रथमं प्रदिष्टा ।
तत्प्रत्ययात्कृतमिदं नहि सिद्धवाक्या-
न्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि ॥११॥

यैः पुष्पकभद्रादिभिः आदेशिकैः । प्रथमं पूर्वम् । विपत्तिः राज्यापहरणरूपा विपद् । दृष्टा अवलोकिता, सूचितेत्यर्थः । (तैरेव आदेशिकैः) अथ अनन्तरम् । पद्मावती । मगधराजपुत्री । नरपतेः उदयनस्य । महिषी पत्नी । भवित्री भाविनी । प्रदिष्टा कथिता । तत्प्रत्ययात् आदेशिकविश्वासात् । इदं वासवदत्ताया निक्षेपरूपेण स्थापनम् । कृतं विहितम् । हि यतः । विधिः दैवम् । सुपरीक्षितानि सम्यक् विवेचितानि । सिद्धवाक्यानि दैवज्ञवचांसि उत्क्रम्य उल्लङ्घ्य । न गच्छति न व्रजति । सिद्धवाक्यानुसारेण वर्तते इत्यर्थः ॥११॥

यौगन्धरायण—(मन में)अहा! कार्य का आधा भार तो समाप्त हुआ । मन्त्रियों के साथ जैसी मंत्रणा की थी वैसा ही फल हो रहा है । जब स्वामी पुनः राज्य पा लेंगे और मैं वासवदत्ता को उनके पास पहुँचाऊँगा तब श्रीमती मगधराजकुमारी, वासवदत्ता के चरित्र की साक्षिणी होगी । क्योंकि—

पद्मावती महाराज की पत्नी होंगी (पद्मावती नरपतेः महिषी भवित्री)—यह उन सिद्धों ने कहा है (प्रदिष्टा), जिन्होंने उदयन पर आनेवाली राज्यनाशरूपी विपत्ति को पहले ही देख लिया था (यैः विपत्तिः प्रथमं दृष्टा) । उनपर विश्वास करके(तत्प्रत्ययात्)हमने यह सब काम किया है (इदं कृतम्) । क्योंकि भाग्य (विधिः) सिद्ध पुरुषों के सुपरीक्षित वचनों का (सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि) अतिक्रमण नहीं करता है (उत्क्रम्य नहि गच्छति) ॥११॥

(ततः प्रविशति ब्रह्मचारी)

ब्रह्मचारी—(ऊर्ध्वमवलोक्य) स्थितो मध्याह्नः। दृढमस्मि परिश्रान्तः। अथ कस्मिन् प्रदेशे विश्रमयिष्ये ? (परिक्रम्य) भवतु, दृष्टम्। अभितस्तपोवनेन भवितव्यम्। तथाहि—

विस्रब्धं हरिणाश्चरन्त्यचकिता देशागतप्रत्यया
वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः सर्वे दयारक्षिताः।
भूयिष्ठं कपिलानि गोकुलधनान्यक्षेत्रवत्यो दिशो
निस्सन्दिग्धमिदं तपोवनमयं धूमो हि बह्वाश्रयः ॥१२॥

हरिणाः मृगाः। देशात् तपोवनप्रदेशाद् हेतोः। आगतः प्राप्तः प्रत्ययः विश्वासो येषां ते तथाभूताः। विस्रब्धं निश्शङ्कम् (क्रि० वि०) यथा स्यात्तथा चरन्ति परिभ्रमन्ति। सर्वे निरपवादम्। वृक्षाः पादपाः। पुष्पैः कुसुमैः फलैश्च। समृद्धाः पूर्णाः विटपाः शाखाः येषां ते दयया अनुकम्पया रक्षिताः संवर्धिताः। कपिलानि कपिलवर्णानि। गोकुलानि गोवृन्दानि घनानीव। भूयिष्ठं बहूनि। वर्तन्ते इति शेषः। दिशः ककुभः। अक्षेत्रवत्यः क्षेत्रहीनाः। इदं पुरोवर्ति। तपोवनम् आश्रमस्थानम्। इति निस्संदिग्धं निश्चितम्। अयं पुरोवर्ती। धूमः यज्ञीयधूमः। बह्वाश्रयः बहूनि स्थानानि यज्ञद्रव्याणि वा आश्रय आधारो यस्य सः तथाविधः (परितः प्रसरति) ॥१२॥

(ब्रह्मचारी का प्रवेश)

ब्रह्मचारी—(ऊपर की ओर देखकर)मध्याह्न हो गया है। मैं बहुत थक गया हूं। अब कहाँ विश्राम करूँ ? (घूमकर) अच्छा, देख लिया। यह चारों ओर तपोवन ही होगा। क्योंकि—

हरिण (हरिणाः) निर्भय होकर (अचकिताः) विश्वासपूर्वक (विस्रब्धं) घूम रहे हैं (चरन्ति)। तपोवन में होने से वे निश्चिन्त हो गए हैं (देशागत-प्रत्ययाः)। सभी वृक्षों की शाखाएँ फल-फूलों से भर गई हैं (सर्वे वृक्षाः पुष्प-फलैः समृद्धविटपाः)। इन सभी वृक्षों को प्रेम से पाला-पोसा गया है (सर्वे दयारक्षिताः)। मुनियों की सर्वस्व कपिला गायें (गोकुलधनानि) बहुत-सी (भूयिष्ठम्) चर रही हैं। कहीं भी खेत नहीं है (दिशः अक्षेत्रवत्यः)। निस्सन्देह (निस्सन्दिग्धम्) यह तपोवन है (इदं तपोवनम्)। यह धुआं भी (अयं धूमः हि) कई स्थानों से निकल रहा है (बह्वाश्रयः) ॥१२॥

यावत् प्रविशामि । (प्रविश्य) अये ! आश्रमविरुद्धः खल्वेष जनः ।(अन्यतो विलोक्य) अथवा तपस्विजनोऽप्यत्र । निर्दोषमुपसर्पणम् । अये स्त्रीजनः !

काञ्चुकीयः—स्वैरं स्वैरं प्रविशतु भवान् । सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम ।

वासवदत्ता—हं ! [हम् !]

पद्मावती—अम्मो ! परपुरुसदंसणं परिहरदि अय्या । भोदु, सुपरिपालणीओ खु मण्णासो । [अम्मो ! परपुरुषदर्शनं परिहरत्यार्या । भवतु, सुपरिपालनीयः खलु मन्यासः ।]

काञ्चुकीयः—भोः पूर्वं प्रविष्टाः स्मः । प्रतिगृह्यतामतिथिसत्कारः ।

ब्रह्मचारी—(आचम्य) भवतु भवतु । निवृत्तपरिश्रमोऽस्मि ।

यौगन्धरायणः—भोः कुत आगम्यते? क्व गन्तव्यम्? क्वाधिष्ठानमार्यस्य?

ब्रह्मचारी—भोः श्रूयताम् । राजगृहतोऽस्मि । श्रुतिविशेषणार्थं वत्सभूमौ लावाणकं नाम ग्रामस्तत्रोषितवानस्मि ।

तो मैं प्रवेश करूँ । (प्रवेश करके) अरे, ये तो आश्रम के लोग नहीं हैं । (दूसरी ओर देखकर) यहाँ तापस लोग भी तो हैं । इनके समीप जाने में कोई दोष नहीं । अरे, यहाँ स्त्रियाँ भी हैं !

कञ्चुकी—आप निश्शंक चले आइए । आश्रम के द्वार सभी के लिए खुले हैं ।

वासवदत्ता—हूं ।

पद्मावती—ओह ! आर्या किसी अन्य पुरुष को देखना नहीं चाहती । अच्छा, मुझे अपनी धरोहर की रक्षा अच्छी तरह करनी होगी ।

कञ्चुकी—हम यहाँ पहले आए हैं । आप हमारा अतिथि-सत्कार ग्रहण करें ।

ब्रह्मचारी—(आचमन करके)बहुत अच्छा, अब मेरी थकावट दूर हो गई ।

यौगन्धरायण—आप कहाँ से आ रहे हैं? कहाँ जाएँगे? आपका स्थान कहाँ है ?

ब्रह्मचारी—सुनिए, मैं राजगृह* से आ रहा हूँ । वत्सराज के राज्य में लावाणक गाँव है, वहाँ मैं वेद का विशेष अध्ययन करने के लिए कुछ समय तक रहा ।

---

* मगध की प्राचीन राजधानी का नाम राजगृह था जिसे आजकल राजगिर कहते हैं ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हा लावाणअं नाम ! लावाणअसंकित्तणेण पुणो णवीकिदो विअ मे संदावो । [हा लावाणकं नाम ! लावाणकसङ्कीर्त्तनेन पुनर्नवीकृत इव मे सन्तापः ।]

यौगन्धरायणः—अथ परिसमाप्ता विद्या ?

ब्रह्मचारी—न खलु तावत् ।

यौगन्धरायणः—यद्यनवसिता विद्या, किमागमनप्रयोजनम् ?

ब्रह्मचारी—तत्र खल्वतिदारुणं व्यसनं संवृत्तम् ।

यौगन्धरायणः—कथमिव ?

ब्रह्मचारी—तत्रोदयनो नाम राजा प्रतिवसति ।

यौगन्धरायणः—श्रूयते तत्रभवानुदयनः । किं सः ?

ब्रह्मचारी—तस्यावन्तिराजपुत्री वासवदत्ता नाम पत्नी दृढमभिप्रेता किल ।

यौगन्धरायणः—भवितव्यम् । ततस्ततः ?

वासवदत्ता—(मन में) ओह! लावाणक ! लावाणक नाम लेने से मेरा दुख फिर नया-सा हो गया है ।

यौगन्धरायण—क्या अध्ययन समाप्त हुआ ?

ब्रह्मचारी—नहीं, समाप्त नहीं हुआ ।

यौगन्धरायण—यदि अध्ययन समाप्त नहीं हुआ तो फिर यहाँ आने का क्या कारण ?

ब्रह्मचारी—वहाँ एक भीषण दुर्घटना हो गई है ।

यौगन्धरायण—कैसे ?

ब्रह्मचारी—वहाँ राजा उदयन रहते हैं ।

यौगन्धरायण—उदयन का नाम सुनते हैं । उन्हें क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता उनकी अतिप्रिया पत्नी थी।

यौगन्धरायण—सम्भव है । फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्मिन् मृगयानिष्क्रान्ते राजनि ग्रामदाहेन सा दग्धा।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अलिअं अलिअं खु एदं। जीवामि मंदभाआ। [अलीकमलीकं खल्वेतत्। जीवामि मन्दभागा।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततस्तामभ्यवपत्तुकामो यौगन्धरायणो नाम सचिवस्तस्मिन्नेवाग्नौ पतितः।

यौगन्धरायणः—सत्यं पतित इति। ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः प्रतिनिवृत्तो राजा तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा तयोर्वियोगजनितसन्तापस्तस्मिन्नेवाग्नौ प्राणान् परित्यक्तुकामोऽमात्यैर्महता यत्नेन वारितः।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि अय्यउत्तस्स मइ साणुक्कोसत्तणं। [जानामि जानाम्यार्यपुत्रस्य मयि सानुक्रोशत्वम्।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—जब राजा शिकार खेलने गये तब वासवदत्ता गाँव में आग लगने से जल गई।

वासवदत्ता—(मन में) यह झूठ है, सर्वथा झूठ है। मैं अभागिन तो जीवित हूँ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—तब मंत्री यौगन्धरायण उसे बचाने के लिए उसी आग में कूद पड़ा।

यौगन्धरायण—हाँ ठीक है, कूद पड़ा। फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—जब राजा शिकार से लौटे तब इस दुर्घटना को सुनकर उन दोनों के विरह से दुखी होकर उसी आग में कूदकर मरने को तैयार हो गए, पर मंत्रियों ने बड़े प्रयत्न से उन्हें रोका।

वासवदत्ता—(मन में) मैं जानती हूँ, मैं जानती हूँ कि आर्यपुत्र का मुझ पर कैसा दयाभाव है।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—ततस्तस्याः शरीरोपभुक्तानि दग्धशेषाण्याभरणानि परिष्वज्य राजा मोहमुपगतः ।

सर्वे—हा !

वासवदत्ता—(स्वगतम्) सकामो दारिणं अय्यजोअन्धराअणो होदु । [सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु ।]

चेटी—भट्टिदारिए! रोदिदि खु इअं अय्या ।[भर्तृदारिके रोदिति खल्वियमार्या ।]

पद्मावती—साणुक्कोसाए होदव्वं । [सानुक्रोशया भवितव्यम् ।]

यौगन्धरायणः—अथ किम्, अथ किम् ? प्रकृत्या सानुक्रोशा मे भगिनी । ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—ततः शनैः शनैः प्रतिलब्धसंज्ञः संवृत्तः ।

पद्मावती—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ धरइ । मोहं गदो त्ति सुणिअ सुण्णं विअ मे हिअअं । [दिष्ट्या ध्रियते । मोहं गत इति श्रुत्वा शून्यमिव मे हृदयम् ।]

यौगन्धरायणः—ततस्ततः ?

ब्रह्मचारी—तब वासवदत्ता के पहने हुए, अधजले आभूषणों को छाती से लगाकर राजा मूर्छित हो गए ।

सभी—हाय !

वासवदत्ता—(मन में) आर्य यौगन्धरायण का मनोरथ अब पूर्ण हो ।

दासी—राजकुमारी ! यह आर्या तो रो रही हैं ।

पद्मावती—यह बड़ी दयालु होगी ।

यौगन्धरायण—हाँ-हाँ ! मेरी बहन स्वभाव से ही दयालु है । फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—फिर धीरे-धीरे वे होश में आए ।

पद्मावती—(मन में) अच्छा कि वे जीवित हैं । 'मूर्छित हो गये'—यह सुनकर तो मेरा हृदय सूना-सा हो गया था ।

यौगन्धरायण—फिर क्या हुआ ?

ब्रह्मचारी—ततः स राजा महीतलपरिसर्पणपांसुपाटलशरीरः सहसोत्थाय हा वासवदत्ते ! हा अवन्तिराजपुत्रि ! हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! इति किमपि बहु प्रलपितवान् । किं बहुना—

नैवेदानीं तादृशाश्चक्रवाका
नैवाप्यन्ये स्त्रीविशेषैर्वियुक्ताः ।
धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता
भर्तुः स्नेहात् सा हि दग्धाप्यदग्धा ॥१३॥

यौगन्धरायणः—अथ भोः ! तं तु पर्यवस्थापयितुं न कश्चिद् यत्नवान-मात्यः ?

इदानीं प्रियाविरहार्ते उदयने । चक्रवाकाः कोकाः । तादृशाः उदयनसदृशाः दुःखिताः । नैव न सन्ति । स्त्रीविशेषैः सौन्दर्यादिगुणविशिष्टाभिः स्त्रीभिः सीतादिभिः । वियुक्ताः विरहिताः । अन्येऽपि इतरेऽपि, रामादयः यथा । तादृशाः उदयनसदृशाः विरहाकुलाः । नैव सन्तीति शेषः । सा स्त्री योषित् । धन्या सुभगा । यां स्त्रियम् । भर्ता पतिः । तथा स्नेहेनेति शेषः । जानाति मन्यते । हि निश्चयेन । सा स्त्री । दग्धापि मृताऽपि । भर्तुः स्नेहात् पतिप्रणयात् । अदग्धा जीवन्ती । वर्तते ॥१३॥

ब्रह्मचारी—तब वह राजा भूतल पर लौटने लगे, जिससे उनका शरीर धूल से सन गया । फिर एकाएक उठकर 'हा वासवदत्ता, हा अवन्तिराज-कुमारी, हा प्रिया, हा प्रियशिष्या', ऐसा बहुत कुछ बकते रहे । अधिक क्या कहूँ—

चकवे भी (चक्रवाकाः) अब (इदानीं) वैसे दुखी (तादृशाः) नहीं हैं (नैव) और न कोई अपनी स्त्रियों से बिछुड़े हुए अन्य प्रेमी (नैव अपि अन्ये स्त्री-विशेषैर्वियुक्ताः) ऐसे दुखी हैं । धन्य है (धन्या) वह स्त्री (सा स्त्री) जिसे पति (यां भर्त्ता) वैसा मानता है (तथा वेत्ति); क्योंकि पति का उसके प्रति प्रेम है अतः (भर्तुःस्नेहात्)वह जल कर भी नहीं जली है (दग्धा अपि अदग्धा)॥१३॥

यौगन्धरायण—क्या अब उसे धीरज बँधाने के लिए कोई मंत्री प्रयत्न नहीं करता ?

ब्रह्मचारी—अस्ति रुमण्वान्नामामात्यो दृढं प्रयत्नवांस्तत्रभवन्तं पर्यवस्थापयितुम्। स हि—

अनाहारे तुल्यः प्रततरुदितक्षामवदनः
शरीरे संस्कारं नृपतिसमदुःखं परिवहन्।
दिवा वा रात्रौ वा परिचरति यत्नैर्नरपतिं
नृपः प्राणान् सद्यस्त्यजति यदि तस्याप्युपरमः ॥१४॥

वासवदत्ता—(स्वगतम्) दिट्ठिआ सुणिक्खित्तो दाणिं अय्यउत्तो। [दिष्ट्या सुनिक्षिप्त इदानीमार्यपुत्रः।]

अनाहारे आहारत्यागे। तुल्यः सदृशः नरपतिनेति शेषः। प्रततं सततं रुदितेन रोदनेन क्षामं कृशं वदनम् आननं यस्य सः। नृपतिना राज्ञा समं सदृशं दुःखपूर्वकं यथा स्यात्तथा। शरीरे देहे। संस्कारं शोभाम्। परिवहन् धारयन्। दिवा वा रात्रौ वा अहर्निशम्। यत्नैः प्रयत्नैः। नरपतिं राजानम्। परिचरति शुश्रूषते। यदि। नृपः राजा। सद्यः सपदि। प्राणान् असून्। त्यजति जहाति। तस्य रुमण्वतः। अपि। उपरमः मृत्युः। सद्यः शीघ्रम् एव स्यात् ॥१४॥

ब्रह्मचारी—अमात्य रुमण्वान् उन्हें धीरज बँधाने को निरन्तर प्रयत्न कर रहा है।

यदि राजा नहीं खाता तब वह भी नहीं खाता, अनशन में वह राजा के सदृश है (अनाहारे तुल्यः)। निरन्तर रोने से उसका मुख म्लान हो गया है (प्रततरुदितक्षामवदनः)। राजा के समान बड़े दुख के साथ (नृपतिसमदुःखम्) शरीर की वेष-भूषा बनाये हुए (शरीरे संस्कारं परिवहन्) है, दिन-रात (दिवा वा रात्रौ वा) परिश्रम से (यत्नैः) राजा की सेवा कर रहा है (नरपतिं परिचरति)। यदि राजा प्राणों का परित्याग करता है (नृपः प्राणान् त्यजति) तो उसका भी (तस्य अपि) तत्काल (सद्यः) मरण सम्भव है (उपरमः)॥१४॥

वासवदत्ता—(मन में) भाग्य से आर्यपुत्र इस समय योग्य व्यक्ति के हाथ में हैं।

यौगन्धरायणः— (आत्मगतम्) अहो ! महद् भारमुद्वहति रुमण्वान् । कुतः—

सविश्रमो ह्ययं भारः प्रसक्तस्तस्य तु श्रमः ।
तस्मिन् सर्वमधीनं हि यत्राधीनो नराधिपः ॥१५॥

(प्रकाशम्) अथ भोः ! पर्यवस्थापित इदानीं स राजा ?

ब्रह्मचारी—तदिदानीं न जाने । 'इह तया सह हसितम्, इह तया सह कथितम्, इह तया सह पर्युषितम्, इह तया सह कुपितम्, इह तया सह शयितम्, इत्येवं तं विलपन्तं राजानममात्यैर्महता यत्नेन तस्माद् ग्रामाद् गृहीत्वाऽपक्रान्तम् । ततो निष्क्रान्ते राजनि प्रोषितनक्षत्रचन्द्रमिव नभोऽरमणीयः संवृत्तः स ग्रामः । ततोऽहमपि निर्गतोऽस्मि ।

हि निश्चितम् । अयं वासवदत्तागोपनरूपः । मदीयः मम यौगन्धरायणस्य अयम् । भारः गुरु कार्यम् । सविश्रमः विश्रमेण विश्रान्त्या सहितः । वर्तत इति शेषः । तस्य रुमण्वतः । श्रमः नृपतिरक्षणरूपः । प्रसक्तः सततः । वर्तते इति शेषः । हि यतः । नराधिपः राजा । यत्र यस्मिन् । अधीनः आयत्तः । सर्वम् सकलं कार्यजातम् । तस्मिन् । अधीनम् आयत्तम् ॥१५॥

यौगन्धरायण—(मन में) अहो ! रुमण्वान् बड़ा बोझ सम्हाल रहा है; क्योंकि—

मेरा यह भार (अयं हि भारः) कुछ कम हुआ (सविश्रमः), किन्तु उसका भार (तस्य तु श्रमः) वैसा ही बना है (प्रसक्तः) । सब उसी के अधीन है (तस्मिन् हि सर्वम् अधीनम्) जिसके अधीन राजा है (यत्र नराधिपः अधीनः) ॥१५॥

(प्रकट) अब क्या राजा स्वस्थ हो गए हैं ?

ब्रह्मचारी—यह मैं नहीं जानता । "यहाँ उसके साथ मैं हँसा था, यहाँ उसके साथ मैं बोला था, यहाँ उसके साथ मैं बैठा था, यहाँ उसके साथ मैं रूठा था, यहाँ उसके साथ मैं सोया था"—इस प्रकार विलाप करते हुए राजा को मन्त्री बड़े प्रयत्न से उस गाँव से निकालकर कहीं दूर ले गए । बाद में राजा के वहाँ से चले जाने पर वह गाँव चाँद और तारों से विहीन आकाश की तरह शोभाहीन हो गया । तब मैं भी वहाँ से चला आया हूँ ।

तापसी—सो खु गुणवन्तो णाम राआ जो आअतुएण वि इमिणा एव्वं पसंसीअदि । [स खलु गुणवान् नाम राजा य आगन्तुकेनाप्यनेनैवं प्रशस्यते ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! किं णु खु अवरा इत्थिआ तस्स हत्थं गमिस्सदि ? [भर्तृदारिके ! किन्नु खल्वपरा स्त्री तस्य हस्तं गमिष्यति ?]

पद्मावती—(आत्मगतम्) मम हिअएण एव्व सह मंतिदं [मम हृदयेनैव सह मन्त्रितम् ।]

ब्रह्मचारी—आपृच्छामि भवन्तौ । गच्छामस्तावत् ।

उभौ—गम्यतामर्थसिद्धये ।

ब्रह्मचारी—तथास्तु । (निष्क्रान्तः)

यौगन्धरायणः—साधु, अहमपि तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छामि ।

काञ्चुकीयः—तत्रभवत्याऽभ्यनुज्ञातो गन्तुमिच्छति किल ।

पद्मावती—अय्यस्स भइणिआ अय्येण विना उक्कंठिस्सदि ।

[आर्यस्य भगिनिकाऽऽर्येण विनोत्कण्ठिष्यते]

तापसी—वह राजा बड़ा गुणी होगा जिसकी यह तटस्थ यात्री भी ऐसी प्रशंसा कर रहा है ।

दासी—क्या दूसरी स्त्री उसके हाथ लगेगी ?

पद्मावती—(मन में) दासी ने मेरे मन की बात पूछी ।

ब्रह्मचारी—मैं आप दोनों से विदा माँगता हूँ । मैं अब जाता हूँ ।

दोनों—जाइए अपना कार्य सम्पन्न कीजिए ।

ब्रह्मचारी—अच्छा । (चला जाता है)

यौगन्धरायण—अच्छा, मैं भी आपकी अनुमति से जाना चाहता हूँ ।

कञ्चुकी—आपकी अनुमति से यह जाना चाहता है ।

पद्मावती—आपकी बहन आपके बिना उत्कंठित होगी ।

यौगन्धरायणः—साधुजनहस्तगतैषा नोत्कण्ठिष्यति । (काञ्चुकीय-मवलोक्य) गच्छामस्तावत् ।

काञ्चुकीयः—गच्छतु भवान् पुनर्दर्शनाय ।

यौगन्धरायणः—तथास्तु । (निष्क्रान्तः)

काञ्चुकीयः—समय इदानीमभ्यन्तरं प्रवेष्टुम् ।

पद्मावती—अय्ये ! वंदामि । [आर्ये ! वन्दे]

तापसी—जादे ! तव सदिसं भत्तारं लभेहि । [आर्ये ! तव सदृशं भर्त्तारं लभस्व]

वासवदत्ता—अय्ये वंदामि दाव अहं । [आर्ये ! वन्दे तावदहम्]

तापसी—तुवं पि अइरेण भत्तारं समासादेहि । [त्वमप्यचिरेण भर्तारं समासादय ।]

वासवदत्ता—अणुग्गहीदम्हि । [अनुगृहीतास्मि]

काञ्चुकीयः—तदागम्यताम् । इत इतो भवति ! सम्प्रति हि—

यौगन्धरायण—अच्छे लोगों के पास रहकर यह नहीं घबरायेगी। (कंचुकी को देखकर) अब हम चलते हैं।

कञ्चुकी—आप जाइए, फिर दर्शन होंगे।

यौगन्धरायण—अच्छा ! (चला जाता है)

कञ्चुकी—अब भीतर जाने का समय हो गया है।

पद्मावती—भगवती, मैं प्रणाम करती हूँ।

तापसी—तुम अपने अनुकूल पति को पाओ।

वासवदत्ता—भगवती, मैं भी प्रणाम करती हूँ।

तापसी—तुम शीघ्र ही पति को पाओ।

वासवदत्ता—मैं आपकी कृपा के लिए आभारी हूँ।

कञ्चुकी—तो आइए, इधर आइए, इधर आइए। अब

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः
प्रदीप्तोऽग्निर्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम् ।
परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च सङ्क्षिप्तकिरणो
रथं व्यावर्त्यासौ प्रविशति शनैरस्तशिखरम् ॥१६॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

प्रथमोऽङ्कः समाप्तः

खगाः विहगाः । वासं स्ववसतिम् । उपेताः प्राप्ताः । मुनिजनः तापसगणः । सलिलं जलम् । अवगाढः स्नानार्थं प्रविष्टः । प्रदीप्तः प्रज्वलितः । अग्निः यज्ञीयाग्निः । भाति प्रकाशते । धूमः यज्ञधूमः । मुनिवनं तपोवनम् । प्रविचरति व्याप्नोति । अपि च किञ्च । असौ दूरस्थः । दूरात् दूरप्रदेशात् वियत इत्यर्थः । परिभ्रष्टः पतितः । रविः आदित्यः । अपि । संक्षिप्तकिरणः संक्षिप्ताः संहृताः किरणाः रश्मयः येन सः संहृतकरः सन् । रथं स्यन्दनम् । व्यावर्त्य परावर्त्य । शनैः मन्दं मन्दम् । अस्तशिखरम् अस्ताचलम् । प्रविशति गच्छति ॥१६॥

पक्षी (खगाः) अपने-अपने घोंसलों में चले गए हैं (वासोपेताः) । मुनि लोग (मुनिजनः) स्नान करने लगे हैं (सलिलम् अवगाढः) । अग्नि प्रज्वलित हुई चमक रही है (अग्निः प्रदीप्तः भाति) । धुआँ (धूमः) तपोवन में फैल रहा है (मुनिवनं प्रविचरति) । वह सूर्य भी (असौ रविरपि) ऊँचे से गिर कर (दूरात् परिभ्रष्टः) तथा (अपि च) अपनी किरणों को समेट कर (संक्षिप्तकिरणः), रथ को लौटा कर (रथं व्यावर्त्य) धीरे-धीरे (शनैः) अस्ताचल की ओर जा रहा है (अस्तशिखरं प्रविशति) ॥१६॥

(सभी चले जाते हैं)

पहला अंक समाप्त

———

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कुंजरिए ! कुंजरिए ! कहिं कहिं भट्टिदारिआ पदुमावदी ? किं भणासि, एसा भट्टिदारिआ माहवीलदामंडवस्स पस्सदो कंदुएण कीलदित्ति । जाव भट्टिदारिअं उवसप्पामि । (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इअं भट्टिदारिआ उक्करिदकण्णचुलिएण वाआमसंजादसेदबिंदुविइत्तिदेण परिस्संतरमणीअदंसणेण मुहेण कंदुएण कीलंदी इदो एव्व आअच्छदि । जाव उवसप्पिस्सं । [कुञ्जरिके ! कुञ्जरिके ! कुत्र कुत्र भर्त्तृदारिका पद्मावती ? किं भणसि, एषा भर्त्तृदारिका माधवीलतामण्डपस्य पार्श्वतः कन्दुकेन क्रीडतीति । यावद् भर्त्तृदारिकामुपसर्पामि । अम्मो ! इयं भर्त्तृदारिका उत्कृतकर्णचूलिकेन व्यायामसञ्जातस्वेदबिन्दुविचित्रितेन परिश्रान्तरमणीयदर्शनेन मुखेन कन्दुकेन क्रीडन्तीत एवागच्छति । यावदुपसर्पामि ।] (निष्क्रान्ता)

प्रवेशकः

(ततः प्रविशति कन्दुकेन क्रीडन्ती पद्मावती सपरिवारा वासवदत्तया सह)

वासवदत्ता—हला ! एसो दे कंदुओ । [हला ! एष ते कन्दुकः]

(दासी का प्रवेश)

दासी—कुंजरिका, कुंजरिका, राजकुमारी पद्मावती कहाँ है ? क्या कह रही हो, "यह राजकुमारी वासन्ती-लता-कुंज के पास गेंद खेल रही है ?" अच्छा, तो मैं राजकुमारी के पास चलूँ । (घूमकर और देखते हुए) ओह ! यह राजकुमारी गेंद से खेलती हुई इधर ही आ रही है । कानों के कुंडल ऊपर उठाकर गेंद खेलने के व्यायाम से इसके मुंह पर पसीने की बूंदें आ गई हैं, यह चित्र-विचित्र दीख रही है और थकने पर भी सुन्दर लगती है । तो मैं इसके पास पहुंचूँ । (चली जाती है ।)

(प्रवेशक समाप्त)

(तब परिजनों और वासवदत्ता-सहित गेंद खेलती हुई पद्मावती का प्रवेश) ।

वासवदत्ता—सखी ! यह रही तुम्हारी गेंद ।

पद्मावती—अय्ये ! भोदु दाणिं एत्तअं ।[आर्ये ! भवत्विदानीमेतावत् ।]

वासवदत्ता—हला ! अदिचिरं कंदुएण कीलिअ अहिअसंजादराआ परकेरआ विअ दे हत्था संवुत्ता । [हला ! अतिचिरं कन्दुकेन क्रीडित्वाधिकसञ्जातरागौ परकीयाविव ते हस्तौ संवृत्तौ ।]

चेटी—कीलदु कीलदु दाव भट्टिदारिआ । णिव्वत्तीअदु दाव अअं कण्णाभावरमणीओ कालो । [क्रीडतु क्रीडतु तावद् भर्तृदारिका । निर्वर्त्यतां तावद् अयं कन्याभावरमणीयः कालः ।]

पद्मावती—अय्ये ! किं दाणिं मं ओहसिदुं विअ णिज्झाअसि ? [आर्ये ! किमिदानीं मामपहसितुमिव निध्यायसि ?]

वासवदत्ता—णहि णहि । हला ! अधिअं अज्ज सोहदि । अभिदो विअ दे अज्ज वरमुहं पेक्खामि । [नहि नहि ! अधिकमद्य शोभते । अभित इव तेऽद्य वरमुखं पश्यामि ।

पद्मावती—अवेहि । मा दाणिं मं ओहस ।[अपेहि । मेदानीं मामुपहस ।]

वासवदत्ता—एसम्हि तुण्हीआ भविस्समहासेणबहू ! [एषास्मि तूष्णीका भविष्यन्महासेनवधु !]

पद्मावती—आर्ये ! अब इतना ही रहने दो ।

वासवदत्ता—सखी ! बहुत देर तक गेंद से खेलते-खेलते ललाई के बढ़ जाने से तुम्हारे हाथ मानों पराये से प्रतीत होते हैं ।

दासी—राजकुमारी खेलें, अभी और खेलें । बचपने के इस सुन्दर काल को आनन्द में व्यतीत करें ।

पद्मावती—आर्ये अब तू क्यों मेरी हँसी उड़ाने की सोच रही हो ?

वासवदत्ता—नहीं, नहीं । सखी, आज तुम्हारा मुख अधिक सुन्दर लग रहा है । आज मुझे तुम्हारा मुख सब ओर से रम्य दीख रहा है । (अथवा) आज तेरे वर का मुख निकट ही देख रही हूँ (तेरा विवाह होना निकट ही है) ।

पद्मावती—हट, तू अब मेरा उपहास मत कर ।

वासवदत्ता—महासेन की भावी पुत्रबहू ! अब मैं चुप हो गई ।

पद्मावती—को एसो महासेणो णाम ? [क एष महासेनो नाम ?]

वासवदत्ता—अत्थि उज्जइणीओ राआ पज्जोदो णाम । तस्स बलपरिमाणणिव्वुत्तं णामहेअं महासेणोत्ति । [अस्त्युज्जयिनीयो राजा प्रद्योतो नाम । तस्य बलपरिमाणनिर्वृत्तं नामधेयं महासेन इति ।]

चेटी—भट्टिदारिआ तेण रञ्ञा सह संबंधं णेच्छदि । [भर्तृदारिका तेन राज्ञा सह सम्बन्धं नेच्छति ।]

वासवदत्ता—अह केण खु दाणिं अभिलसदि ? [अथ केन खल्विदानीमभिलषति ?]

चेटी—अत्थि वच्छराओ उदअणो णाम । तस्स गुणाणि भट्टिदारिआ अभिलसदि । [अस्ति वत्सराज उदयनो नाम । तस्य गुणान् भर्तृदारिकाऽभिलषति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तं भत्तारं अभिलसदि । (प्रकाशम्) केण कारणेण ? [(आत्मगतम्) आर्यपुत्रं भर्तारमभिलषति । (प्रकाशम्) । केन कारणेन ?]

चेटी—सानुक्कोसो त्ति । [सानुक्रोश इति]

पद्मावती—यह महासेन कौन है ?

वासवदत्ता—उज्जयिनी का राजा प्रद्योत है । बड़ी सेना का स्वामी होने के कारण उसका नाम महासेन पड़ा ।

दासी—राजकुमारी उस राजा से विवाह-सम्बन्ध करना नहीं चाहती हैं ।

वासवदत्ता—तो फिर किसके साथ विवाह सम्बन्ध करना चाहती हैं ?

दासी—वत्सदेश का राजा उदयन है । राजकुमारी उसके गुणों को चाहती हैं ।

वासवदत्ता—(मन में) मेरे पति को पति बनाना चाहती है । (प्रकट) किस कारण से ?

दासी—इसलिए कि वह दयालु है ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जाणामि जाणामि । अअं वि जणो एव्वं उम्मादिदो । [जानामि जानामि । अयमपि जन एवमुन्मादितः ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! जदि सो राआ विरूवो भवे ? [भर्तृदारिके ! यदि स राजा विरूपो भवेत् ?]

वासवदत्ता—णहि णहि । दंसणीओ एव्व । [नहि नहि दर्शनीय एव ।]

पद्मावती—अय्ये ! कहं तुवं जाणासि ? [आर्ये ! कथं त्वं जानासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कंदो समुदाआरो । किं दाणिं करिस्सं ? होदु, दिट्ठं । (प्रकाशम्) हला ! एव्वं उज्जइणीओ जणो मंतेदि ? [(आत्मगतम्) आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । किमिदानीं करिष्यामि ? भवतु, दृष्टम् । (प्रकाशम्) हला ! एवमुज्जयिनीयो जनो मन्त्रयते ।]

पद्मावती—जुज्जइ । ण खु एसो उज्जइणीदुल्लहो । सव्वजणमणोभिरामं खु सोभग्गं णाम । [युज्यते । न खल्वेष उज्जयिनीदुर्लभः । सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम ।]

(ततः प्रविशति धात्री)

वासवदत्ता—(मन में) हाँ जानती हूँ । मैं भी इसी प्रकार मुग्ध हो गई थी ।

दासी—यदि वह राजा कुरूप हो तब ?

वासवदत्ता—नहीं-नहीं, वह तो सुन्दर ही है ।

पद्मावती—आर्ये ! तू कैसे जानती हो ?

वासवदत्ता—(मन में) आर्यपुत्र के प्रति अतिप्रेम के कारण मैं सदाचार भूल गई । अब क्या करूँ ? अच्छा, सूझ आ गई । (प्रकट) सखी ! इस प्रकार उज्जयिनी के लोग कहते हैं ।

पद्मावती—सम्भव है । उज्जयिनी के लोगों ने इसे देखा है । सौन्दर्य सभी के मन को भाता है ।

(धाय का प्रवेश)

धात्री—जेदु भट्टिदारिआ । भट्टिदारिए ! दिण्णासि । [जयतु भर्तृदारिका । भर्तृदारिके ! दत्तासि ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! कस्स ? [आर्ये ! कस्मै ?]

धात्री—वच्छराअस्स उदअणस्स । [वत्सराजायोदयनाय ।]

वासवदत्ता—अह कुसली सो राआ ? [अथ कुशली स राजा ?]

धात्री—कुसली सो आअदो । तस्य भट्टिदारिआ पडिच्छिदा अ । [कुशली स आगतः । तस्य भर्तृदारिका प्रतीष्टा च ।]

वासवदत्ता—अच्चाहिदं । [अत्याहितम् ।]

धात्री—किं एत्थ अच्चाहिदं ? [किमत्रात्याहितम् ।]

वासवदत्ता—ण हु किंचि । तह णाम संतप्पिअ उदासीणो होदि त्ति । [न खलु किञ्चित् । तथा नाम सन्तप्योदासीनो भवतीति ।]

धात्री—अय्ये ! आअमप्पहाणाणि सुलहपय्यवत्थाणाणि महापुरुसहिअआणि होंति । [आर्ये ! आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति ।]

वासवदत्ता—अय्ये ! सअं एव्व तेण वरिदा ? [आर्ये ! स्वयमेव तेन वरिता ?]

धाय—राजकुमारी की जय हो । राजकुमारी ! तुम्हारी सगाई हो गई ।

वासवदत्ता—आर्ये ! किसके साथ ?

धाय—वत्सराज उदयन के साथ ।

वासवदत्ता—वह राजा कुशल तो है ?

धाय—कुशल है, यहाँ आया भी है । राजकुमारी को उसने स्वीकार भी कर लिया है ।

वासवदत्ता—ओह बहुत बुरा हुआ ।

धाय—इसमें क्या बुरा हुआ ?

वासवदत्ता—और तो कुछ नहीं, किन्तु वासवदत्ता के वियोग में ऐसा दुःखी होकर (अब एकाएक उसके प्रति) उदासीन हो गया ।

धाय—आर्ये, महापुरुषों के हृदय शास्त्रों के उपदेशों को मान्यता देते हुए सहज ही में धैर्य धारण कर लेते हैं ।

वासवदत्ता—आर्ये ! क्या उसने स्वयं ही पद्मावती की माँग की ?

धात्री—णहि णहि अण्णप्पओअणेण इह आअदस्स अभिजणविज्जाण-वओरूवं पेक्खिअ सअं एव्व महाराएण दिण्णा। [नहि नहि। अन्यप्रयोजनेने-हागतस्याभिजनविज्ञानवयोरूपं दृष्ट्वा महाराजेन दत्ता।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एव्वं अणवरद्धो दाणिं एत्थ अय्यउत्तो। [(आत्मगतम्) एवमनपराद्ध इदानीमत्रार्यपुत्रः।]

(प्रविश्यापरा)

चेटी—तुवरदु तुवरदु दाव अय्या। अज्ज एव्वं किल सोभणं णक्खत्तं। अज्ज एव्व कोदुअमंगलं कादव्वं त्ति अम्हाणं भट्टिणी भणादि। [त्वरतां त्वरतां तावदार्या। अद्यैव किल शोभनं नक्षत्रम्। अद्यैव कौतुकमङ्गलं कर्त्तव्य-मित्यस्माकं भट्टिनी भणति।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) जह जह तुवरदि, तह तह अंधीकरेदि मे हिअअं। [(आत्मगतम्) यथा यथा त्वरते, तथा तथान्धीकरोति मे हृदयम्।]

धात्री—एदु एदु भट्टिदारिआ। [एत्वेतु भर्त्तृदारिका]

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः

धाय—नहीं, नहीं; वह किसी अन्य काम से यहाँ आया था। उसके वंश, विद्या, उम्र और रूप को देखकर महाराज ने स्वयं ही पद्मावती उसे दे दी।

वासवदत्ता—(मन में) यदि ऐसा है तो इसमें आर्यपुत्र का कोई दोष नहीं है।

(दूसरी दासी का प्रवेश)

दासी—राजकुमारी, शीघ्र करो, शीघ्र करो। आज ही अच्छा लग्न है। हमारी स्वामिनी कहती हैं कि आज ही विवाह का मंगल कार्य करना है।

वासवदत्ता—(मन में) ज्यों-ज्यों यह जल्दी कर रही है, त्यों-त्यों मेरे हृदय को व्याकुल कर रही है।

धाय—आइए, राजकुमारी, आइए।

(सब लोगों का प्रस्थान)

दूसरा अंक समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विचिन्तयन्ती वासवदत्ता)

वासवदत्ता--विवाहामोदसंकुले अंतेउरचउस्साले परित्तजिअ पदुमावदिं इह आअदम्हि पमदवणं। जाव दाणिं भाअधेअणिव्वुत्तं दुखं विणोदेमि। (परिक्रम्य) अहो! अच्चाहिदं। अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो। जाव उवविसामि। (उपविश्य) धण्णा खु चक्कवाअवहू, जा अण्णोण्णविरहिदा ण जीवइ। ण खु अहं पाणाणि परित्तजामि। अय्यउत्तं पेक्खामि त्ति एदिणा मणोरहेण जीवामि मंदभाआ। [विवाहामोदसङ्कुले अन्तःपुरचतुश्शाले परित्यज्य पद्मावतीमिहागतास्मि प्रमदवनम्। यावदिदानीं भागधेयनिर्वृत्तं दुःखं विनोदयामि। (परिक्रम्य) अहो! अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः। यावद् उपविशामि। (उपविश्य) धन्या खलु चक्रवाकवधूः, याऽन्योन्यविरहिता न जीवति। न खल्वहं प्राणान् परित्यजामि। आर्यपुत्रं पश्यामीत्येतेन मनोरथेन जीवामि मन्दभागा।]

चतुश्शालम्—चतस्रः शालाः समाहृता इति समाहारद्विगुः। विनोदयामि-भविष्यदर्थे लट्।

(विचारमग्न वासवदत्ता का प्रवेश)

वासवदत्ता—विवाहोत्सव की धूमधाम से परिपूर्ण राजमहल की चौखंडी में पद्मावती को छोड़कर मैं यहाँ प्रमदवन में आई हूँ। तो अब दुर्भाग्य से लाये गये दुख को शान्त करूँ। (घूमकर) हाय! बुरा हुआ। आर्यपुत्र भी पराये हो गये। अच्छा बैठ जाऊँ। (बैठकर) धन्य है वह चकई, जो प्रिय से बिछुड़कर नहीं जी सकती। मैं तो मरती भी नहीं। मैं अभागिन 'पति को फिर देख पाऊँगी'—इस मनोरथ से जी रही हूँ।

(ततः प्रविशति पुष्पाणि गृहीत्वा चेटी)

चेटी—कहिं णु खु गदा अय्या आवंतिआ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्मो ! इअं चिंतासुण्णहिअआ णीहारपडिहदचंदलेहा विअ अमंडिदभद्दअं वेसं धारअंदी पिअंगुसिलापट्टअे उवविट्ठा । जाव उवसप्पामि । (उपसृत्य) अय्ये ! आवंतिए ! को कालो तुमं अण्णेसामि । [क्व नु खलु गता आर्यावन्तिका ? अम्मो ! इयं चिन्ताशून्यहृदया नीहारप्रतिहतचन्द्रलेखेवामण्डितभद्रकं वेषं धारयन्ती प्रियङ्गुशिलापट्टके उपविष्टा । यावदुपसर्पामि । (उपसृत्य) आर्ये ! आवन्तिके ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

वासवदत्ता—किण्णिमित्तं ? [किन्निमित्तम् ?]

चेटी—अम्हाअं भट्टिणी भणादि 'महाकुलप्पसूदा सिणिद्धा णिउणा' त्ति इमं दाव कोदुअमालिअं गुम्हदु अय्या । [अस्माकं भट्टिनी भणति—'महाकुलप्रसूता स्निग्धा निपुणेति इमां तावत् कौतुकमालिकां गुम्फत्वार्या' ।]

वासवदत्ता—अह कस्स किल गुम्हिदव्वं ? [अथ कस्मै किल गुम्फितव्यम् ?]

चेटी—अम्हाअं भट्टिदारिआए । [अस्माकं भर्तृदारिकायै]

(हाथ में फूल लेकर चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्या आवन्तिका कहाँ चली गई ? (घूमकर देखते हुए) अहो ! यह तो चिन्ता के कारण अपने को भी भूल गई है। कुहरे से फीकी बनी चन्द्रकला की भाँति दीख रही है। स्वभाव-सुन्दर वेष धारण किए हुई प्रियंगुलता के नीचे शिला पर बैठी है। अच्छा, इसके पास जाऊँ। (पास जाकर) आर्या आवन्तिका ! भला कब से मैं तुझे ढूंढ रही हूँ।

वासवदत्ता—क्यों ?

चेटी—हमारी स्वामिनी कहती हैं—'आप उच्च वंश में उत्पन्न हुई हैं, स्नेह रखती हैं, चतुर हैं; अतः आप ही इस सोहागमाला को गूंथें।'

वासवदत्ता—यह किसलिए गूंथनी है ?

चेटी—हमारी राजकुमारी के लिए ।

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) एदं पि मए कत्तव्वं आसी । अहो ! अकरुणा खु इस्सरा । [(आत्मगतम्) एतदपि मया कर्त्तव्यमासीत् । अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वराः ।]

चेटी—अय्ये ! मा दाणिं अण्णं चिंतिअ । एसो जामादुओ मणिभूमीए ण्हाअदि । सिग्घं दाव गुम्हदु अय्या ! [आर्ये ! मेदानीमन्यच्चिन्तयित्वा । एषा जामाता मणिभूम्यां स्नायति । शीघ्रं तावद् गुम्फत्वार्या ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) ण सक्कुणोमि अण्णं चिंतेदुं । (प्रकाशम्) हला ! किं दिट्ठो जामादुओ ? [(आत्मगतम्) न शक्नोम्यन्यच्चिन्तयितुम् । (प्रकाशम्) हला ! किं दृष्टो जामाता ?]

चेटी—आम, दिट्ठो भट्टिदारिआए सिणेहेण अम्हाअं कोदूहलेण अ । [आम्, दृष्टो भर्तृदारिकायाः स्नेहेनास्माकं कौतूहलेन च ।]

वासवदत्ता—कीदिसो जामादुओ ? [कीदृशो जामाता ?]

चेटी—अय्ये ! भणामि दाव, ण ईरिसो दिट्ठपुरुवो । [आर्ये ! भणामि तावद्, नेदृशो दृष्टपूर्वः ।]

वासवदत्ता—हला ! भणाहि भणाहि, किं दंसणीओ ? [हला ! भण भण, किं दर्शनीयः ?]

वासवदत्ता—(मन में) यह भी मुझे करना था । देवता निश्चय ही निठुर हैं ।

चेटी—अब और कुछ मत सोचें । दामाद मणिभूमि में नहा रहे हैं । आप शीघ्र इसे गूँथ दें ।

वासवदत्ता—(मन में) अब कुछ और तो सोच ही नहीं सकती । (प्रकट) क्या तूने दामाद को देखा है ?

चेटी—हाँ देखा है, राजकुमारी (पद्मावती) के प्रति स्नेह और अपनी उत्सुकता के कारण ।

वासवदत्ता—दामाद कैसे हैं ?

चेटी—आर्ये ! मैं तो कहती हूँ, ऐसा दामाद मैंने पहले देखा ही नहीं ।

वासवदत्ता—कहो-कहो, क्या वह सुन्दर है ?

चेटी—सक्कं भणिदुं सरचावहीणो कामदेवो त्ति । [शक्यं भणितुं शरचापहीनः कामदेव इति ।]

वासवदत्ता—होदु एत्तअं । [भवत्वेतावत्]

चेटी—किण्णिमित्तं वारेसि ? [किन्निमित्तं वारयसि ?]

वासवदत्ता—अजुत्तं परपुरुससंकित्तणं सोदुं । [अयुक्तं परपुरुषसङ्कीर्त्तनं श्रोतुम् ।]

चेटी—तेण हि गुम्हदु अय्या सिग्घं । [तेन हि गुम्फत्वार्या शीघ्रम् ।]

वासवदत्ता—इअं गुम्हामि । आणेहि दाव । [इयं गुम्फामि । आनय तावत्]

चेटी—गण्हदु अय्या । [गृह्णात्वार्या ।]

वासवदत्ता—(वर्जयित्वा विलोक्य) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [इदं तावदौषधं किं नाम ?]

चेटी—अविहवाकरणं णाम । [अविधवाकरणं नाम ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) इदं बहुसो गुम्हिदव्वं मम अ पदुमावदीए अ । (प्रकाशम्) इमं दाव ओसहं किं णाम ? [(आत्मगतम्) इदं बहुशो गुम्फितव्यं मह्यं च पद्मावत्यै च । (प्रकाशम्) इदं तावदौषधं किं नाम ?]

चेटी—यही कह सकती हूँ कि धनुष-बाण से रहित कामदेव है ।

वासवदत्ता—आगे मत कहो ।

चेटी—क्यों रोकती हो ?

वासवदत्ता—परपुरुष की प्रशंसा सुनना उचित नहीं है ।

चेटी—अच्छा, तो आप शीघ्र माला गूँथ दें ।

वासवदत्ता—अच्छा, गूँथती हूँ; ले आओ ।

चेटी—यह लीजिए ।

वासवदत्ता—(रोककर और देखकर) इस औषधि का नाम क्या है ?

चेटी—यह सोहाग रखने की औषधि है ।

वासवदत्ता—(मन में) इसे तो अवश्य गूँथना चाहिए—अपने और पद्मावती के लिए । (प्रकट) इस दूसरी औषधि का क्या नाम है ?

चेटी—सवत्तिमद्दणं णाम । [सपत्नीमर्दनं नाम]

वासवदत्ता—इदं ण गुम्हिदव्वं । [इदं न गुम्फितव्यम् ।]

चेटी—कीस ? [कस्मात् ?]

वासवदत्ता—उवरदा तस्स भय्या, तं णिप्पओअणं त्ति । [उपरता तस्य भार्या, तन्निष्प्रयोजनमिति ।]

(प्रविश्यापरा)

चेटी—तुवरदु, तुवरदु अय्या । एसो जामादुओ अविहवाहि अब्भंतरचउस्सालं पवेसीअदि । [त्वरतां त्वरतामार्या । एष जामाता अविधवाभिरभ्यन्तरचतुश्शालं प्रवेश्यते ।]

वासवदत्ता—अइ ! वदामि, गण्ह एदं । [अयि ! वदामि, गृहाणैतत् ।]

चेटी—सोहणं । अय्ये ! गच्छामि दाव अहं । [शोभनम् । आर्ये ! गच्छामि तावदहम् ।]

(उभे निष्क्रान्ते)

चेटी—सौत का मानमर्दन करने वाली ।

वासवदत्ता—इसे नहीं गूँथना चाहिए ।

चेटी—क्यों ?

वासवदत्ता—उनकी पत्नी तो मर चुकी ! अब इसका गूँथना व्यर्थ है ।

(दूसरी चेटी का प्रवेश)

चेटी—शीघ्र करें, शीघ्र करें । सोहागिन स्त्रियाँ दामाद को भीतर चौखंडी में ले जा रही हैं ।

वासवदत्ता—सुन, यह लो ।

चेटी—अच्छा ! आर्ये ! अब मैं चली ।

(दोनों दासियाँ चली जाती हैं)

वासवदत्ता—गदा एसा । अहो ! अच्चाहिदं । अय्यउत्तो वि णाम परकेरओ संवुत्तो । अविदा ! सय्याए मम दुक्खं विणोदेमि, जदि णिद्दं लभामि । [गतैषा । अहो ! अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः । अविदा ! शय्यायां मम दुःखं विनोदयामि, यदि निद्रां लभे ।]

(निष्क्रान्ता)

तृतीयोऽङ्कः समाप्तः

वासवदत्ता—यह तो गई । ओह ! बहुत बुरा हुआ । आर्यपुत्र भी पराये हो गये । ओह ! यदि सो जाती तो मेरा दुख चला जाता ।

(चली जाती है)

तीसरा अंक समाप्त

चतुर्थोऽङ्कः

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः—(सहर्षम्) भो ! दिट्ठिआ तत्तहोदो वच्छराअस्स अभिप्पेद-विवाहमंगलरमणिज्जो कालो दिट्ठो। भो को णाम एदं जाणादि—तादिसे वयं अणत्थसलिलावत्ते पक्खित्ता उण उम्मज्जिस्सामो त्ति। इदाणिं पासादेसु वसीअदि, अंदेउरदिग्घिआसु ण्हाईअदि, पकिदिमउरसुउमाराणि मोदअखज्ज-आणि खज्जीअंति त्ति अणच्छरसंवासो उत्तरकुरुवासो मए अणुभवीअदि। एक्को खु महंतो दोसो, मम आहारो सुट्ठु ण परिणमदि, सुप्पच्छदणाए सय्याए णिद्दं ण लभामि। जह वादसोणिदं अभिदो विअ वत्तदि त्ति पेक्खामि ! भोः ! सुहं णामअपरिभूदं अकल्लवत्तं च। [भोः ! दिष्ट्या तत्रभवतो वत्सराजस्याभि-प्रेतविवाहमङ्गलरमणीयः कालो दृष्टः। भोः ! को नामैतज्जानाति—तादृशे वय-मनर्थसलिलावर्ते प्रक्षिप्ताः पुनरुन्मङ्क्ष्याम इति। इदानीं प्रासादेषूष्यते, अन्तः-पुरदीर्घिकासु स्नायते, प्रकृतिमधुरसुकुमाराणि मोदकखाद्यानि खाद्यन्त इत्य-नप्सरस्संवास उत्तरकुरुवासो मयाऽनुभूयते। एकः खलु महान् दोषः, ममाहारः सुष्ठु न परिणमति। सुप्रच्छदनायां शय्यायां निद्रां न लभे। यथा वातशो-

---

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—(खुशी से) सौभाग्य से ही मैंने वत्सराज उदयन के अभीष्ट मंगलमय विवाह का शुभ अवसर देखा। कौन जानता था कि संकट के भँवर में पड़े हुए हम फिर बाहर निकल आवेंगे। अब हम राजमहलों में रहते हैं। रनवास की बावड़ियों में नहाते हैं। स्वभाव से मीठी और मुलायम मिठाइयाँ खाते हैं। अप्सराओं के बिना हम अन्य सभी स्वर्ग-सुखों को भोग रहे हैं। किन्तु एक बड़ा भारी दोष है कि मुझे भोजन ठीक से नहीं पचता, सुन्दर गद्दे की शय्या पर भी नींद नहीं आती; ऐसा लगता है कि मानों वातरक्त के रोग

णितमभित इव वर्त्तते इति पश्यामि । भोः ! सुखं नामयपरिभूतमकल्यवर्तं च ।]

(ततः प्रविशति चेटी)

चेटी—कहिं णु खु गदो अय्यवसंतओ ? (परिक्रम्यावलोक्य) अम्हो ! एसो अय्यवसंतओ । (उपगम्य) अय्य वसंतअ ! को कालो तुमं अण्णेसामि । [कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तकः ? अहो ! एष आर्यवसन्तकः । आर्य वसन्तक ! कः कालः, त्वामन्विष्यामि ।]

विदूषकः—(दृष्ट्वा) किंणिमित्तं भद्दे ! मं अण्णेससि ? [किन्निमित्तं भद्रे ! मामन्विष्यसि ?]

चेटी—अम्हाणं भट्टिणी भणादि—अवि ण्हादो जामादुओ त्ति । [अस्माकं भट्टिनी भणति—अपि स्नातो जामातेति ।]

विदूषकः—किंणिमित्तं भोदि पुच्छदि ? [किन्निमित्तं भवती पृच्छति ?]

चेटी—किमण्णअं । सुमणोवण्णअं आणेमि त्ति । [किमन्यत् । सुमनोवर्णकमानयामीति ।]

ने चारों ओर से आ दबाया हो । बीमारी में और जहाँ प्रातः भोजन न मिलता हो, कोई भी सुख, सुख नहीं होता ।

(चेटी का प्रवेश)

चेटी—आर्य वसंतक कहाँ चला गया ? (घूमते हुए देखकर) अहो ! यही तो आर्य वसंतक है ! (पास जाकर) आर्य वसन्तक ! कब से मैं तुम्हें खोज रही हूँ ।

विदूषक—(देखकर) किसलिए मुझे ढूंढ रही हो ?

चेटी—हमारी स्वामिनी पूछती हैं—क्या दामाद नहा लिये ?

विदूषक—वह क्यों पूछती हैं ?

चेटी—और क्या ? फूलमाला ले आऊँ, इसलिए ।

विदूषकः—ण्हादो तत्तभवं। सव्वं आणेदु भोदी वज्जिअ भोअणं। [स्नातस्तत्र भवान्। सर्वमानयतु भवती वर्जयित्वा भोजनम्।]

चेटी—किंणिमित्तं वारेसि भोअणं? [किन्निमित्तं वारयसि भोजनम्?]

विदूषकः—अधण्णस्स मम कोइलाणं अक्खिपरिवट्टो विअ कुक्खिपरिवट्टो संवुत्तो। [अधन्यस्य मम कोकिलानामक्षिपरिवर्त्त इव कुक्षिपरिवर्त्तः संवृत्तः।]

चेटी—ईदिसो एव्व होहि। [ईदृश एव भव।]

विदूषकः—गच्छदु भोदी। जाव अहं वि तत्तहोदो सआसं गच्छामि। [गच्छतु भवती। यावदहमपि तत्रभवतः सकाशं गच्छामि।]

(निष्क्रान्तौ।)

(प्रवेशकः)

(ततः प्रविशति सपरिवारा पद्मावती आवन्तिकावेषधारिणी वासवदत्ता च)

चेटी—किण्णिमित्तं भट्टिदारिआ पमदवणं आअदा? [किन्निमित्तं भर्तृदारिका प्रमदवनमागता?]

विदूषक—वह नहा लिये हैं। आप सब कुछ ला सकती हैं, किन्तु भोजन नहीं।

चेटी—तुम भोजन क्यों मना कर रहे हो?

विदूषक—मुझ अभागे का पेट ऐसा उलट-फेर हो रहा है, जैसा कि कोयल की आँख में हुआ करता है।

चेटी—ऐसे ही बने रहो।

विदूषक—तुम जाओ। मैं भी तब तक महाराज के पास जाता हूँ।

(दोनों चले जाते हैं)

(प्रवेशक समाप्त)

(सेविकाओं के साथ पद्मावती और आवंतिका के वेष में वासवदत्ता का प्रवेश)

चेटी—राजकुमारी प्रमद वन में किस लिए आई हैं?

पद्मावती—हला ! ताणि दाव सेहालिआगुम्हआणि पेक्खामि कुसुमिदाणि वा ण वेत्ति ? [हला ! ते तावत् शेफालिकागुल्मकाः पश्यामि कुसुमिता वा नवेति ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! ताणि कुसुमिदाणि णाम, पवालंतरिदेहिं विअ मौतिआलंबएहिं आइदाणि कुसुमेहिं । [भर्त्तृदारिके ! ते कुसुमिता नाम, प्रवालान्तरितैरिव मौक्तिकलम्बकैराचिता कुसुमैः ।]

पद्मावती—हला ! जदि एव्वं, किं दाणिं विलंबेसि ? [हला ! यद्येवं किमिदानीं विलम्बसे ?]

चेटी—तेण हि इमस्सिं सिलावट्टए मुहुत्तअं उपविसदु भट्टिदारिआ । जाव अहं वि कुसुमावचअं करेमि । [तेन ह्यस्मिन् शिलापट्टके मुहूर्त्तकमुपविशतु भवती । यावदहमपि कुसुमावचयं करोमि ।]

पद्मावती—अय्ये ! किं एत्थ उपविसामो ? [आर्ये ! किमत्रोपविशामः ?]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । [एवं भवतु ।]

(उभे उपविशतः)

चेटी—(तथा कृत्वा) पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ अद्धमण्णसिलावट्टएहिं विअ सेहालिआकुसुमेहिं पूरिअं मे अंजलिं । [पश्यतु पश्यतु भर्त्तृदारिका अर्धमनःशिलापट्टकैरिव शेफालिकाकुसुमैः पूरितं मेऽञ्जलिम् ।]

पद्मावती—शेफालिका के गुच्छे खिले हैं या नहीं—यह देखने को ।

चेटी—राजकुमारी ! वे खिल गए । मूँगों से भरी मोतियों की माला के समान वे फूलों से भर गए हैं ।

पद्मावती—सखी, यदि ऐसा है तो अब देर क्यों कर रही हो ?

चेटी—तो इस शिला पर राजकुमारी कुछ देर बैठें तब तक मैं भी कुछ फूल बटोर लूँ ।

पद्मावती—आर्ये, क्या हम यहाँ बैठें ?

वासवदत्ता—हाँ ।

(दोनों बैठ जाती हैं)

चेटी—(फूल चुनकर) देखिए, राजकुमारी ! देखिए, मनसिल के टुकड़ों की भाँति शेफालिका के फूलों से मेरी अंजलि भर गई है ।

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अहो विइत्तदा कुसुमाणं ! पेक्खदु पेक्खदु अय्या ! [अहो विचित्रता कुसुमानाम् ! पश्यतु पश्यत्वार्या !]

वासवदत्ता—अहो ! दस्सणीअदा कुसुमाणं । [अहो दर्शनीयता कुसुमानाम् ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! किं भूयो अवइणुस्सं ? [भर्तृदारिके ! किं भूयोऽवचेष्यामि ?]

पद्मावती—हला ! मा मा भूयो अवइणिअ । [हला ! मा मा भूयोऽवचित्य ।]

वासवदत्ता—हला ! किंणिमित्तं वारेसि ?[हला किन्निमित्तं वारयसि?]

पद्मावती—अय्यउत्तो इह आअच्छिअ इमं कुसुमसमिद्धिं पेक्खिअ सम्माणिदा भवेय्यं । [आर्यपुत्र इहागत्येमां कुसुमसमृद्धिं दृष्ट्वा सम्मानिता भवेयम् ।]

वासवदत्ता—हला ! पिओ दे भत्ता ! [हला ! प्रियस्ते भर्त्ता !]

पद्मावती—अय्ये ! ण जाणामि, अय्यउत्तेण विरहिदा उक्कंठिदा होमि । [आर्ये न जानामि, आर्यपुत्रेण विरहितोत्कण्ठिता भवामि ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दुक्खरं खु अहं करेमि । इअं वि णाम एव्वं मंतेदि । [दुष्करं खल्वहं करोमि । इयमपि नामैवं मन्त्रयते ।]

पद्मावती—(देखकर) अहा ! कैसे रंग-बिरंगे हैं ये फूल ! आप देखिए तो!

वासवदत्ता—अहो, ये फूल तो बहुत सुन्दर हैं !

चेटी—क्या और फूल चुनूँ ?

पद्मावती—नहीं नहीं, और मत चुनो ।

वासवदत्ता—सखी ! क्यों रोकती हो ?

पद्मावती—आर्यपुत्र यहाँ आकर इन फूलों को देखकर मुझे आदर देंगे ।

वासवदत्ता—सखी ! क्या पति तुझे प्रिय हैं ?

पद्मावती—मैं नहीं जानती, पर उनके बिना मन नहीं लगता ।

वासवदत्ता—(मन में) निश्चय ही मैं बहुत कठिन काम कर रही हूँ । यह भी तो ऐसा ही कह रही है ।

चेटी—अभिजादं खु भट्टिदारिआए मंतिदं—पिओ मे भत्तेति । [अभिजातं खलु भर्तृदारिकया मन्त्रितम्—प्रियो मे भर्त्तेति ।]

पद्मावती—एक्को खु मे संदेहो । [एकः खलु मे सन्देहः ।]

वासवदत्ता—किं किं ? [किं किम् ?]

पद्मावती—जह मम अय्यउत्तो तह एव्व अय्याए वासवदत्ताए त्ति ? [यथा ममार्यपुत्रस्तथैवार्याया वासवदत्ताया इति ?]

वासवदत्ता—अदो वि अहिअं ? [अतोऽप्यधिकम् ।]

पद्मावती—कहं तुवं जाणासि ?[कथं त्वं जानासि ?]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) हं, अय्यउत्तपक्खवादेण अदिक्कंतो समुदाआरो । एव्वं दाव भणिस्सं । (प्रकाशम्) जइ अप्पो सिणेहो सा सजणं ण परित्तजदि । [हम्, आर्यपुत्रपक्षपातेनातिक्रान्तः समुदाचारः । एवं तावद् भणिष्यामि । यद्यल्पः स्नेहः सा स्वजनं न परित्यजति ।]

पद्मावती—होदव्वं [भवितव्यम्]

चेटी—भट्टिदारिए ! साहु भत्तारं भणाहि—अहं पि वीणं सिक्खिस्सामि त्ति । [भर्तृदारिके ! साधु भर्तारं भण—अहमपि वीणां शिक्षिष्य इति ।]

चेटी—राजकुमारी ने उच्च कुल के अनुरूप ही कहा है कि मुझे पति प्रिय है ।

पद्मावती—बस मुझे एक ही सन्देह है ।

वासवदत्ता—क्या ?

पद्मावती—जैसे वे मुझे प्रिय हैं, वैसे आर्या वासवदत्ता को भी थे क्या ?

वासवदत्ता—इससे भी अधिक ।

पद्मावती—तुझे कैसे मालूम ?

वासवदत्ता—(मन में) पति के प्रति अतिप्रेम होने के कारण मैं मर्यादा को लाँघ गई । अब ऐसा कहूँ । (प्रकट) यदि प्रेम कम होता तो वह बंधुजनों को न त्यागती ।

पद्मावती—हो सकता है ।

चेटी—राजकुमारी ! पति से दबाव के साथ कहो कि मैं भी वीणा सीखूंगी ।

पद्मावती—उत्तो मए अय्यउत्तो । [उक्तो मयाऽऽर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—तदो किं भणिदं ? [ततः किं भणितम् ?]

पद्मावती—अभणिअ किंचि दिग्घं णिस्ससिअ तुण्हीओ संवुत्तो । [अभणित्वा किंचिद् दीर्घं निश्वस्य तूष्णीकः संवृत्तः]

वासवदत्ता—तदो तुवं किं विअ तक्केसि ? [ततस्त्वं किमिव तर्कयसि ?]

पद्मावती—तक्केमि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरिअ दक्खिणदाए मम अग्गदो ण रोदिदित्ति । [तर्कयाम्यार्यायाः वासवदत्तायाः गुणान् स्मृत्वा दक्षिणतया ममाग्रतो न रोदितीति ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) धण्णा खु म्हि, जदि एव्वं सच्चं भवे । [धन्या खल्वस्मि, यद्येवं सत्यं भवेत् ।]

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

विदूषकः—ही ! ही ! पचिअपडिअबंधुजीवकुसुमविरलवादरमणिज्ज पमदवणं । इदो दाव भवं ! [ही ही प्रचितपतितबन्धुजीवकुसुमविरलवातरमणीयं प्रमदवनम् । इतस्तावद् भवान् ।]

पद्मावती—मैंने आर्यपुत्र से कहा था ।

वासवदत्ता—तब उन्होंने क्या कहा ?

पद्मावती—कुछ नहीं कहा । लंबी सांस लेकर चुप रहे ।

वासवदत्ता—फिर इससे तुम क्या समझती हो ?

पद्मावती—मैं समझती हूँ कि आर्या वासवदत्ता के गुणों को याद कर, शिष्टाचार के कारण मेरे सामने नहीं रोये ।

वासवदत्ता—(मन में) मैं धन्य हूँ यदि यह बात सही हो ।

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—'बन्धूक' पुष्प कुछ बीन लिये गये हैं और कुछ गिरे पड़े हैं; मन्द-मन्द हवा चल रही है, जिससे यह प्रमद वन सुहावना हो गया है । आप इधर आइए ।

राजा—वयस्य ! वसन्तक ! अहमयमागच्छामि]

कामेनोज्जयिनीं गते मयि तदा कामप्यवस्थां गते
दृष्ट्वा स्वैरमवन्तिराजतनयां पञ्चेषवः पातिताः ।
तैरद्यापि सशल्यमेव हृदयं भूयश्च विद्धा वयं
पञ्चेषुर्मदनो यदा कथमयं षष्ठः शरः पातितः ? ॥१॥

विदूषकः—कहिं णु खु गदा तत्तहोदी पदुमावदी, लदामंडवं गदा भवे, उदाहो असणकुसुमसंचिदं वग्घचम्मावगुंठिदं विअ पव्वद्रतिलअं णाम सिलापट्टअं गदा भवे, आदु अधिअकडुअगंधसत्तच्छदवणं पविट्ठा भवे, अहव आलिहिदमिअपक्खिसंकुलं दारुपव्वदअं गदा भवे ! (ऊर्ध्वमवलोक्य) ही ही सर-

---

मयि उदयने । उज्जयिनीम् अवन्तिराजधानीम् । गते प्राप्ते सति । तदा तस्मिन् काले । अवन्तिराजतनयां प्रद्योतमहासेनसुताम् वासवदत्ताम् । स्वैरं विस्रब्धम् । दृष्ट्वा विलोक्य । कामपि अनिर्वचनीयाम् । अवस्थां दशाम् । गते प्राप्ते सति । कामेन मदनेन । पञ्चेषवः पञ्चबाणाः । पातिताः निक्षिप्ताः । तैः कामपातितैः बाणैः । अद्यापि अधुनापि । हृदयं मनः । सशल्यं शल्येन कीलकेन सहितं विद्धमिति यावत् । वर्तते इति शेषः । वयम् । भूयः पुनः । च । विद्धाः पीडिताः । यदा । मदनः कामः । पञ्चेषुः पञ्चबाणः । (इति प्रसिद्धः) (तदा) अयम् पद्मावतीपरिणयरूपः । षष्ठः । शरः बाणः । कथं केन हेतुना । पातितः प्रक्षिप्तः ॥१॥

राजा—मित्र वसन्तक ! यह मैं आया ।

उस समय जब मैं उज्जयिनी में गया और अवन्तिराजकुमारी वासवदत्ता को जी भर कर देखा और (उसे देखने से) मेरी विचित्र दशा हो गई, तब कामदेव ने मुझपर अपने पाँचों बाण चलाये । उनके घाव अभी तक मेरे हृदय से नहीं मिटे । उसने फिर मुझे बींध दिया । कामदेव के पास जब पाँच ही बाण हैं तब उसने यह छठा बाण कहाँ से फेंका ? ॥१॥

विदूषक—पद्मावती कहाँ गई होंगी ? लतामंडप में गई होंगी अथवा बाघ के चर्म से मढ़े हुए की भाँति 'असन' के फूलों से आच्छादित 'पर्वततिलक' नामक शिलापट्ट पर गई होंगी अथवा अति कटु गन्धवाले सप्तच्छद वृक्षों के

अकालणिम्मले अंतरिक्खे पसारिअबलदेवबाहुदंसणीअं सारसपंतिं जाव समाहिदं गच्छंतिं पेक्खदु दाव भवं । [कुत्र नु खलु गता तत्रभवती पद्मावती, लतामण्डपं गता भवेत्, उताहो असनकुसुमसञ्चितं व्याघ्रचर्माविगुण्ठितमिव पर्वततिलकं नाम शिलापट्टकं गता भवेत्, अथवा अधिककटुकगन्धसप्तच्छदवनं प्रविष्टा भवेत्, अथवा आलिखितमृगपक्षिसङ्कुलं दारुपर्वतकं गता भवेत् । (ऊर्ध्वमवलोक्य) ही ! ही ! शरत्कालनिर्मलेऽन्तरिक्षे प्रसारितबलदेवबाहुदर्शनीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीं पश्यतु तावद् भवान् ।]

राजा—वयस्य ! पश्याम्येनाम्,

ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च
सप्तर्षिवंशकुटिलां च निवर्तनेषु ।
निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य
सीमामिवाम्बरतलस्य विभज्यमानाम् ॥२॥

ऋजुः सरला, आयता दीर्घा ताम् । विरलाम् असंहताम् । नतोन्नताम् उच्चावचाम् । निवर्तनेषु परावर्तनेषु । सप्तर्षिवंशः सप्तसंख्याकः तारकगणः तद्वत् कुटिलां वक्राम् । निर्मुच्यमानः निर्मुक्तनिर्मोकः यः भुजगः सर्पः तस्य उदरमिव निर्मलं स्वच्छं तस्य । अम्बरतलस्य गगनतलस्य । विभज्यमानां पृथक् क्रियमाणाम् । सीमां मर्यादारेखाम् । इव । (एनां सारसपङ्क्तिम् पश्यामि) ॥२॥

वन में गई होंगी अथवा उस काष्ठपर्वत पर गई होंगी, जहाँ पशु-पक्षियों के चित्र बने हैं ।(आकाश की ओर देखकर) अहा, शरत्काल के स्वच्छ आकाश में फैली हुई बलदाऊ की भुजाओं के समान सुन्दर सारस पक्षियों की एक-सी गति से चलती हुई पंक्ति को आप देखिए ।

राजा—मित्र ! देख रहा हूँ ।

यह कहीं सीधी, कहीं चौड़ी, कहीं घनी, कहीं पतली, कहीं ऊँची और कहीं नीची है । घुमाव के समय सप्तर्षि-तारामंडल के समान कुटिल आकार की हो जाती है । जिसने अभी केंचुली छोड़ी है, उस साँप के उदर की भांति स्वच्छ आकाश को दो भागों में विभाजित करने वाली सीमा-रेखा जैसी मालूम होती है ॥२॥

चेटी—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ एदं कोकणदमालापडंररमणीअं सारसपंतिं जाव समाहिदं गच्छंतिं। अम्मो ! भट्टा ! [पश्यतु पश्यतु भर्त्तृदारिका एतां कोकनदमालापाण्डररमणीयां सारसपङ्क्तिं यावत् समाहितं गच्छन्तीम्। अहो ! भर्त्ता !]

पद्मावती—हं ! अय्यउत्तो। अय्ये ! तव कारणादो अय्यउत्तदसणं परिहरामि। ता इमं दाव माहवीलदामंडवं पविसामो [हम् ! आर्यपुत्रः। आर्ये ! तव कारणादार्यपुत्रदर्शनं परिहरामि। तदिमं तावन्माधवीलतामण्डपं प्रविशामः।]

वासवदत्ता—एव्वं होदु। [एवं भवतु]

(तथा कुर्वन्ति)

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

राजा—कथं भवान् जानाति ?

विदूषकः—इमाणि अवइदकुसुमाणि सेफालिआगुच्छआणि पेक्खदु दाव भवं। [इमानपचितकुसुमान् शेफालिकागुच्छान् प्रेक्षतां तावद् भवान्।]

चेटी—देखिए, राजकुमारी ! सफेद कमल की माला के समान सुन्दर, एकगति से चलती हुई सारस-पंक्ति को देखिए। अहो, स्वामी आ गये !

पद्मावती—हूँ ! आर्यपुत्र आ गए। आर्ये ! तुम्हारे कारण ही मैं आर्यपुत्र से नहीं मिलती। आओ, वासन्ती-लता-मण्डप के भीतर चलें।

वासवदत्ता—अच्छा।

(लता-मण्डप के भीतर चली जाती हैं।)

विदूषक—महारानी पद्मावती यहाँ आकर लौट गई होंगी !

राजा—तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?

विदूषक—शेफालिका के इन गुच्छों को देखो। इनसे फूल बीन लिये गए हैं।

राजा—अहो ! विचित्रता कुसुमस्य वसन्तक !

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) वसंतअसंकित्तणेण अहं पुण जाणामि उज्जइणीए वत्तामि त्ति । [वसन्तकसङ्कीर्त्तनेनाहं पुनर्जानामि उज्जयिन्यां वर्त इति ।]

राजा—वसन्तक ! अस्मिन्नेवासीनौ शिलातले पद्मावतीं प्रतीक्षिष्यावहे ।

विदूषकः—भो ! तह । (उपविश्योत्थाय) ही ! ही ! सरअकालतिक्खो दुस्सहो आदवो । ता इमं दाव माहवीमंडवं पविसामो ।[भोस्तथा ।(उपविश्योत्थाय)। ही ! ही ! शरत्कालतीक्ष्णो दुस्सह आतपः । तदिमं तावन्माधवीमण्डपं प्रविशावः ।]

राजा—बाढम्, गच्छाग्रतः ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभौ परिक्रामतः)

पद्मावती—सव्वं आउलं कत्तुकामो अय्यवसंतओ । किं दाणिं करेम्ह ? [सर्वमाकुलं कर्त्तुकाम आर्यवसन्तकः । किमिदानीं कुर्मः ?]

चेटी—भट्टिदारिए ! एदं महुअरपरिणिलीणं ओलंबलदं ओधूय भट्टारं

राजा—कैसे विचित्र हैं ये फूल, वसन्तक !

वासवदत्ता—(मन में) वसन्तक का नाम लेने से मुझे ऐसा लगता है कि मैं उज्जयिनी में ही हूँ ।

राजा—वसन्तक ! इसी शिला पर बैठकर पद्मावती की प्रतीक्षा करें ।

विदूषक—हाँ, अच्छा । (बैठकर फिर उठकर) ओह ! शरद् की तीखी धूप सही नहीं जाती । आओ, इस माधवीलता के कुञ्ज में चलें ।

राजा—अच्छा, आगे चलो ।

विदूषक—अच्छा ।

(दोनों चलते हैं)

पद्मावती—आर्य वसन्तक तो सब चौपट करना चाहते हैं । अब क्या किया जाय ?

चेटी—राजकुमारी ! इस सहायक लता को, जिस पर भौंरे बैठे हैं, हिलाकर मैं स्वामी को नहीं आने दूँगी ।

वारइस्सं । [भर्तृदारिके ! एतां मधुकरपरिनिलीनामवलम्बलतामवधूय भर्तारं वारयिष्यामि ।]

पद्मावती—एव्वं करेहि । [एवं कुरु]

(चेटी तथा करोति)

विदूषकः—अविहा अविहा, चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं । [अविधा अविधा, तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—दासीए पुत्तेहिं महुअरेहिं पीडिदोम्हि [दास्याः पुत्रैर्मधुकरैः पीडितोऽस्मि ।]

राजा—मा मा भवानेवम् । मधुकरसन्त्रासः परिहार्यः । पश्य—

मधुमदकला मधुकरा मदनार्त्ताभिः प्रियाभिरुपगूढाः ।
पादन्यासविषण्णा वयमिव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥३॥

मधुनः पुष्परसस्य यो मदः तेन कलाः अव्यक्तमधुरनादाः, यद्वा कलाः मूकाः (जडो मूकः कलोऽप्यवाक् इति यादवः) । मदनार्ताभिः मदनेन कामेन आर्ताभिः व्यथिताभिः । प्रियाभिः कामिनीभिः । उपगूढाः आश्लिष्टाः । मधुकराः भ्रमराः । पादन्यासविषण्णाः पादयोः चरणयोः न्यासेन क्षेपेण विषण्णाः खिन्नाः सन्तः । वयमिव यथाऽहं तथैव । कान्तावियुक्ताः प्रियाविरहिताः । स्युः भवेयुः ॥३॥

पद्मावती—ऐसा ही करो ।

(चेटी वैसा ही करती है)

विदूषक—ओह ! ओह ! ठहरिए, महाराज, ठहरिए ।

राजा—क्यों !

विदूषक—ये दुष्ट भौंरे मुझे सता रहे हैं ।

राजा—नहीं, नहीं; तुम ऐसा न करो । भौंरों को त्रस्त नहीं करना चाहिए । देखो—

मधुरस के पीने से मत्त होकर अव्यक्त मधुर कूजन करते हुए तथा कामार्त्त प्रियाओं से आलिंगित ये भौंरे हमारे पाँव की आहट से त्रस्त होकर, हमारी तरह ही अपनी प्रियाओं से वियुक्त हो जायेंगे ॥३॥

तस्मादिहैवासिष्यावहे ।

विदूषकः—एव्वं होदु । [एवं भवतु]

(उभावुपविशतः)

चेटी—भट्टिदारिए ! रुद्धा खु म्ह वयं । [भर्तृदारिके ! रुद्धाः खलु स्मो वयम् ।]

पद्मावती—दिट्ठिआ उवविट्ठो अय्यउत्तो । [दिष्ट्योपविष्ट आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) दिट्ठिआ पकिदित्थसरीरो अय्यउत्तो [दिष्ट्या प्रकृतिस्थशरीर आर्यपुत्रः ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! सस्सुपादा खु अय्याए दिट्ठी । [भर्तृदारिके! साश्रुनाता खल्वार्याया दृष्टिः ।]

वासवदत्ता—एसा खु महुअराणं अविणआदो कासकुसुमरेणुणा पडिदेण सोदआ मे दिट्ठी । [एषा खलु मधुकराणामविनयात् काशकुसुमरेणुना पतितेन सोदका मे दृष्टिः ।]

पद्मावती—जुज्जइ । [युज्यते ।]

विदूषकः—भोः ! सुण्णं खु इदं पमदवणं । पुच्छिदव्वं किंचि अत्थि ।

तो हम दोनों यहीं बैठें ।

विदूषक—अच्छा ।

(दोनों बैठ जाते हैं)

चेटी—राजकुमारी ! हम यहाँ घिर गईं ।

पद्मावती—सौभाग्य से आर्यपुत्र वहीं बैठ गए ।

वासवदत्ता—(मन में) भाग्य से आर्यपुत्र स्वस्थ हैं ।

चेटी—राजकुमारी ! आर्या आवन्तिका की आँखों में आँसू भर आए हैं ।

वासवदत्ता—भौंरों की गड़बड़ से कास के फूलों की धूलि मेरी आँखों में पड़ गई; अतः मेरी आँखों में पानी आ गया है ।

पद्मावती—हाँ, ऐसा ही है ।

विदूषक—यह प्रमदवन सूना है । मैं कुछ पूछना चाहता हूँ । आपसे पूछूँ ?

पुच्छामि भवंतं ? [भोः ! शून्यं खल्विदं प्रमदवनम् । प्रष्टव्यं किञ्चिदस्ति ? पृच्छामि भवन्तम् ?]

राजा—छन्दतः ।

विदूषकः—का भवदो पिआ ? तदाणिं तत्तहोदी वासवदत्ता, इदाणिं पदुमावदी वा ? [का भवतः प्रिया ? तदानीं तत्रभवती वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ?]

राजा—किमिदानीं भवान् महति बहुमानसङ्कटे मां न्यस्यति ?

पद्मावती—हला ! जादिसे संकटे निक्खित्तो अय्यउत्तो [हला ! यादृशे सङ्कटे निक्षिप्त आर्यपुत्रः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) अहं अ मंदभाआ । [अहं च मन्दभागा ।]

विदूषकः—सेरं सेरं भणादु भवं । एक्का उवरदा, अवरा असण्णिहिदा । [स्वैरं स्वैरं भणतु भवान् । एकोपरता, अपराऽसन्निहिता ।]

राजा—वयस्य ! न खलु न खलु ब्रूयाम् । भवांस्तु मुखरः ।

पद्मावती—एत्तएण भणिदं अय्यउत्तेण ।[एतावता भणितमार्यपुत्रेण ।]

विदूषकः—भो ! सच्चेण सवामि, कस्सवि ण आचक्खिस्सं । एसा

राजा—जो चाहो, पूछो ।

विदूषक—आपको कौन अधिक प्रिय है ? तब वासवदत्ता या अब पद्मावती ?

राजा—अब क्यों आप मुझे प्रेम-संकट में डाल रहे हैं ?

पद्मावती—सखी ! आर्यपुत्र कैसे संकट में डाल दिए गए ।

वासवदत्ता—(मन में) और अभागिन मैं भी ।

विदूषक—आप संकोच रहित होकर कहिए । एक तो मर गई और दूसरी पास मे नहीं है ।

राजा—मित्र ! मैं नहीं कहूँगा । तुम मुँहफट हो ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ने इतने में ही कह दिया ।

विदूषक—मैं सत्य की सौगंध लेता हूँ कि किसी से भी न कहूँगा । मैंने यह जीभ काट ली ।

संदट्टा मे जीहा । [भोः ! सत्येन शपे, कस्मा अपि नाख्यास्ये । एषा सन्दष्टा मे जिह्वा ।]

राजा—नोत्सहे सखे ! वक्तुम् ।

पद्मावती—अहो ! इमस्स पुरोभाइदा । एत्तिएण हिअअं ण जाणादि । [अहो ! अस्य पुरोभागिता । एतावता हृदयं न जानाति ।]

विदूषकः—किं ण भणादि मम ? अणाचक्खिअ इमादो सिलावट्टआदो ण सक्कं एक्कपदं वि गमिदुं । एसो रुद्धो अत्तभवं । [किं न भणति मम ? अनाख्यायाऽस्माच्छिलापट्टकान्न शक्यमेकपदमपि गन्तुम् । एष रुद्धोऽत्रभवान् ।]

राजा—किं बलात्कारेण ?

विदूषकः—आम, बलक्कारेण । [आम्, बलात्कारेण ।]

राजा—तेन हि पश्यामस्तावत् ।

विदूषकः—पसीददु पसीददु भवं । वअस्सभावेण साविदोसि, जइ सच्चं ण भणासि । [प्रसीदतु प्रसीदतु भवान् । वयस्यभावेन शापितोऽसि, यदि सत्यं न भणसि ।]

राजा—का गतिः ? श्रूयताम्—

राजा—मित्र ! मुझे कहने का साहस नहीं होता ।

पद्मावती—ओह, इसका हठ ! इतने पर भी मन की बात नहीं समझता ।

विदूषक—क्यों नहीं मुझे कहते ? बिना कहे इस शिलापट्ट से एक पग भी नहीं जा सकते । आप यहीं रोके गये ।

राजा—क्या बल से ?

विदूषक—हाँ, बल से ।

राजा—तब हम देखते हैं ।

विदूषक—मान जाइये, मान जाइये महाराज । मैत्री की सौगन्ध, यदि आप सच नहीं कहते ।

राजा—विवश हूँ । सुनो—

पद्मावती बहुमता मम यद्यपि रूपशीलमाधुर्यैः ।
वासवदत्ताबद्धं न तु तावन्मे मनो हरति ॥४॥

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु भोदु । दिण्णं वेदणं इमस्स परिखेदस्स । अहो ! अज्जादवासं पि एत्थ बहुगुणं संपज्जइ । [भवतु भवतु । दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य । अहो ! अज्ञातवासोऽप्यत्र बहुगुणः सम्पद्यते ।]

चेटी—भट्टिदारिए ! अदक्खिण्णो खु भट्टा [भर्तृदारिके ! अदाक्षिण्यः खलु भर्त्ता ।]

पद्मावती—हला ! मा मा एव्वं । सदक्खिण्णो एव्व अय्यउत्तो जो इदाणिं वि अय्याए वासवदत्ताए गुणाणि सुमरदि । [हला ! मा मैवम् । सदाक्षिण्य एवार्यपुत्रः, य इदानीमप्यार्याया वासवदत्ताया गुणान् स्मरति ।]

वासवदत्ता—भद्दे ! अभिजणस्स सदिसं मंतिदं । [भद्रे ! अभिजनस्य सदृशं मन्त्रितम् ।]

राजा—उक्तं मया । भवानिदानीं कथयतु । का भवतः प्रिया ? तदा वासवदत्ता, इदानीं पद्मावती वा ?

यद्यपि । पद्मावती । रूपशीलमाधुर्यैः रूपं सौन्दर्यं, शीलं स्वभावः, माधुर्यं प्रियभाषिता, इत्येतैः गुणैः । मम मे । बहुमता अत्यादृता । तथापि । वासवदत्ताबद्धं वासवदत्तायां बद्धं लग्नम् आसक्तमिति यावत् । मे मम । मनः चेतः । तु तावत् । न हरति न वशयति ॥४॥

रूप, शील और माधुर्य के कारण यद्यपि पद्मावती मुझे बहुत प्रिय है, तो भी वासवदत्ता पर आसक्त मेरे मन को आकर्षित नहीं कर पाती ॥४॥

वासवदत्ता—(मन में) बस, मुझे कटु का पुरस्कार मिल गया । ओह ! यहाँ छिपकर रहना भी लाभप्रद हो रहा है ।

चेटी—राजकुमारी ! स्वामी शिष्ट नहीं हैं ।

पद्मावती—ऐसा मत कहो । आर्यपुत्र शिष्ट ही हैं; क्योंकि वे अब भी आर्या वासवदत्ता के गुणों को नहीं भूले ।

वासवदत्ता—आर्ये ! आपने अपने उच्च कुल के अनुरूप ही कहा ।

राजा—मैंने तो कह दिया । अब तुम भी कहो—तुम्हें कौन अच्छी लगती है, तब वासवदत्ता या अब पद्मावती ?

पद्मावती—अय्यउत्तो वि वसंतओ संवुत्तो। [आर्यपुत्रोऽपि वसन्तकः संवृत्तः।]

विदूषकः—किं मे विप्पलविदेण। उभओ वि तत्तहोदीओ मे बहुमदाओ। [किं मे विप्रलपितेन। उभे अपि तत्रभवत्यौ मे बहुमते।]

राजा—वैधेय! मामेवं बलाच्छ्रुत्वा किमिदानीं नाभिभाषसे?

विदूषकः—किं मं पि बलक्कारेण? [किं मामपि बलात्कारेण?]

राजा—अथ किम्। बलात्कारेण।

विदूषकः—तेण हि ण सक्कं सोदुं। [तेन हि न शक्यं श्रोतुम्।]

राजा—प्रसीदतु प्रसीदतु महाब्राह्मणः। स्वैरं स्वैरमभिधीयताम्।

विदूषकः—इदाणिं सुणादु भवं। तत्तहोदी वासवदत्ता मे बहुमदा। तत्तहोदी पदुमावदी तरुणी दस्सणीआ अकोवणा अणहंकारा महुरवाआ सदक्खिण्णा। अअं च अवरो महंतो गुणो सिणिद्धेण भोअणेण मं पच्चुग्गच्छइ—कहिं णु खु गदो अय्यवसंतओ त्ति। [इदानीं शृणोतु भवान्। तत्रभवती वासवदत्ता मे बहुमता। तत्रभवती पद्मावती तरुणी दर्शनीया अनहङ्कारा मधुरवाक् सदाक्षिण्या। अयं चापरो महान् गुणः, स्निग्धेन भोजनेन मां प्रत्युद्गच्छति कुत्र नु खलु गत आर्यवसन्तक इति।]

पद्मावती—आर्यपुत्र भी वसंतक ही हो गये।

विदूषक—मेरे बड़बड़ाने से क्या लाभ? मेरे लिए दोनों माननीय हैं।

राजा—मूर्ख! मुझसे हठपूर्वक सुनकर अब तुम मुझे क्यों नहीं बतला रहे हो?

विदूषक—क्या मुझसे भी बलपूर्वक सुनना चाहते हो?

राजा—हाँ, बलपूर्वक।

विदूषक—तब तुम नहीं सुन सकते।

राजा—मान जाइए, महाराज मान जाइए। जैसा चाहिए, कहिए।

विदूषक—तो आप सुनें। वासवदत्ता मुझे बहुत मान्य थीं। पद्मावती युवती, सुन्दर, प्रसन्नमुख, गर्वहीन और मधुरभाषिणी हैं। इनमें एक और बड़ा गुण है कि स्वादिष्ट भोजन से मेरा स्वागत करती हैं और पुकारती हैं कि 'आर्य वसन्तक कहाँ गये?'

वासवदत्ता—(स्वगतम्) भोदु भोदु, वसंतअ ! सुमरेहि दाणिं एदं । [भवतु भवतु वसन्तक ! स्मरेदानीमेताम् ।]

राजा—भवतु भवतु वसन्तक ! सर्वमेतत् कथयिष्ये देव्यै वासवदत्तायै ।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविधा वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिराद् खलूपरता वासवदत्ता ।]

राजा—(सविषादम्) एवम् ! उपरता वासवदत्ता ? वयस्य !

अनेन परिहासेन व्याक्षिप्तं मे मनस्त्वया ।
ततो वाणी तथैवेयं पूर्वाभ्यासेन निस्सृता ॥५॥

पद्मावती—रमणीओ खु कहाजोओ णिससेण विसंवादिओ । [रमणीयः खलु कथायोगो नृशंसेन विसंवादितः ।]

वासवदत्ता—(आत्मगतम्) भोदु, भोदु, विस्सत्थम्हि । अहो ! पिअं णाम

अनेन पूर्वोक्तेन । परिहासेन नर्मवचसा । त्वया । मे मम । मनः चेतः । व्याक्षिप्तं परमार्थात् दूरं नीतम् । ततः तस्मात् कारणात् । पूर्वाभ्यासेन प्राक्संस्कारवशात् । इयम् एषा वाणी । पूर्वाभ्यासेन प्राक्संस्कारवशात् । तथैव जीवन्त्यां वासवदत्तायां यथा तथा । निस्सृता निर्गता ॥५॥

वासवदत्ता—(मन में) अच्छा, अच्छा वसंतक ! अब इसे याद करो ।

राजा—अच्छा, अच्छा वसंतक ! यह सब मैं देवी वासवदत्ता से कह दूँगा ।

विदूषक—हाय, वासवदत्ता ! कहाँ है वासवदत्ता ? उन्हें मरे कई दिन बीत गये ।

राजा—(शोक से) ऐसा ! क्या वासवदत्ता मर गई ?

इस परिहास से तुमने मेरे मन को व्याकुल कर दिया है । इसीलिए तो पहले की तरह यह बात मेरे मुँह से निकल पड़ी ॥५॥

पद्मावती—कैसा सुन्दर कथा-प्रसंग इस दुष्ट ने बिगाड़ दिया ।

वासवदत्ता—(मन में) अच्छा, मुझे अब विश्वास हो गया । कितना

ईदिसं वअणं अप्पच्चक्खं सुणीअदि ! [भवतु भवतु, विश्वस्तास्मि । अहो ! प्रियं नाम ईदृशं वचनमप्रत्यक्षं श्रूयते ।

विदूषकः—धारेदु धारेदु भवं । अणदिक्कमणीओ हि विही । ईदिसं दाणिं एदं । [धारयतु धारयतु भवान् । अनतिक्रमणीयो हि विधिः । ईदृशमिदानीमेतत् ।]

राजा—वयस्य ! न जानाति भवानवस्थाम् । कुतः ?

दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम् ।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह वाष्पं
प्राप्तऽऽनृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥६॥

विदूषकः—अस्सुपादकिलिण्णं खु तत्तहोदो मुहं । जाव मुहोदअं आणेमि । [अश्रुपातक्लिन्नं खलु तत्रभवतो मुखम् । यावन्मुखोदकमानयामि ।]

बद्धमूलः बद्धं मूलं यस्य येन वा सः चिरपरिचयरूढ इत्यर्थः । अनुरागः वासवदत्ताविषयकं प्रेम । त्यक्तुं परिहर्तुम् दुःखं दुष्करम् । स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः संस्मृत्य । दुःखं कष्टम् । नवत्वं नूतनताम् । याति प्राप्नोति । तु तथापि । एषा लोकयात्रा लोकरीतिः । यत् । इह लोके । वाष्पम् अश्रु । विमुच्य विसृज्य । प्राप्तानृण्या प्राप्तं लब्धम् आनृण्यम् ऋणनिष्कृतिर्येन सः । बुद्धिः चित्तवृत्तिः । प्रसादं शान्तिम् । याति गच्छति ॥६॥

अच्छा है ऐसा वचन परोक्ष में सुनना !

विदूषक—धैर्य रखिए, धैर्य रखिए महाराज ! भाग्य को कोई हटा नहीं सकता । यह तो अब ऐसा सहना ही होगा ।

राजा—मित्र ! तुम मेरी दशा को नहीं समझते; क्योंकि

दृढ़ प्रेम को त्यागना सरल नहीं है । बार-बार उसकी याद करने से दुख नया हो जाता है । लोक व्यवहार यही है कि आँसू बहाकर, प्रेम से उऋण होकर मन शान्त हो जाता है ॥६॥

विदूषक—आपका मुँह आँसू गिरने से मलिन हो गया है । मैं मुँह धोने के लिए जल ले आऊँ ।

(निष्क्रान्तः)

पद्मावती—अय्ये ! बप्फाउलपडंतरिदं अय्यउत्तस्स मुहं । जाव णिक्कमम्ह [आर्ये ! बाष्पाकुलपटान्तरितमार्यपुत्रस्य मुखम् । यावन्निष्क्रामामः]

वासवदत्ता—एव्वं होदु । अहव चिट्ठ तुवं । उक्कंठिदं भत्तारं उज्झिअ अजुत्तं णिग्गमणं । अहं एव्व गमिस्सं [एवं भवतु । अथवा तिष्ठ त्वम् । उत्कण्ठितं भर्तारमुज्झित्वाऽयुक्तं निर्गमनम् । अहमेव गमिष्यामि ।]

चेटी—सुट्ठु अय्या भणादि । उवसप्पदु दाव भट्टिदारिआ [सुष्ठ्वार्या भणति । उपसर्पतु तावद् भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—किं णु खु पविसासि ? [किन्नु खलु प्रविशामि ?]

वासवदत्ता—हला ! पविस । [हला ! प्रविश ।]

(इत्युक्त्वा निष्क्रान्ता)

(प्रविश्य)

विदूषकः—(नलिनीपत्रेण जलं गृहीत्वा) एसा तत्तहोदी पदुमावदी ! [एषा तत्रभवती पद्मावती !]

(चला जाता है)

पद्मावती—आर्ये ! आर्यपुत्र का मुँह आँसुओं से भर गया है और वे उसे रुमाल से ढके हुए हैं । अब हम निकल चलें ।

वासवदत्ता—अच्छा । अथवा तुम यहीं रहो । दुखी स्वामी को छोड़कर तुम्हारा जाना उचित नहीं । मैं ही चली जाती हूँ ।

चेटी—आप ठीक कह रही हैं । राजकुमारी अपने स्वामी के पास जाएँ ।

पद्मावती—क्या मैं उनके पास जाऊँ ?

वासवदत्ता—सखी ! जाओ । (यह कहकर चली जाती है)

(प्रवेश करके)

विदूषक—(कमल के पत्ते में जल लेकर) यह तो पद्मावती आ गई !

पद्मावती—अय्य ! वसंतअ ! किं एदं ? [आर्य वसन्तक ! किमेतत् ?]

विदूषकः—एदं इदं । इदं एदं । [एतदिदम् । इदमेतत्]

पद्मावती—भणादु भणादु अय्यो भणादु । [भणतु भणत्वार्यो भणतु ।]

विदूषकः—भोदि ! वादणीदेण कासकुसुमरेणुणा अक्खिणिपडिदेण सस्सुपादं खु तत्तहोदो मुहं । ता गण्हदु होदी इदं मुहोदअं । [भवति ! वातनीतेन काशकुसुमरेणुनाऽक्ष्णिनिपतितेन साश्रुपातं खलु तत्रभवतो मुखम् । तद् गृह्णातु भवतीदं मुखोदकम् ।]

पद्मावती—(आत्मगतम्) अहो ! सदक्खिण्णस्स जणस्स परिजणो वि सदक्खिण्णो एव्व होदि । (उपेत्य) जेदु अय्यउत्तो । इदं मुहोदअं । [अहो ! सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति । (उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः । इदं मुखोदकम् ।]

राजा—अये ! पद्मावती ! (अपवार्य) वसन्तक ! किमिदम् ?

विदूषकः—(कर्णे) एव्वं विअ । [एवमिव]

राजा—साधु वसन्तक ! साधु (आचम्य) पद्मावति ! आस्यताम् ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । (उपविशति) [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।]

पद्मावती—आर्य वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—वह यह है, यह वह है ।

पद्मावती—कहो, श्रीमान् जी, कहो ।

विदूषक—आर्ये ! कास के फूलों की पराग आँख में पड़ जाने से राजा का मुँह आँसुओं से भर गया है । आप मुँह धोने का यह जल लीजिए ।

पद्मावती—(मन में) ओह ! शिष्ट जन के सेवक भी शिष्ट होते हैं । (पास आकर) आर्यपुत्र की जय हो, यह मुँह धोने के लिए जल है ।

राजा—ओह ! पद्मावती ! (अलग होकर) वसन्तक ! यह क्या ?

विदूषक—(कान में) यह ऐसा है ।

राजा—वसन्तक ! तुमने ठीक किया, ठीक किया (आचमन करके) पद्मावती बैठो ।

पद्मावती—जैसी आपकी आज्ञा ! (बैठ जाती है)

राजा—पद्मावति !

शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन भामिनि ।
काशपुष्पलवेनेदं साश्रुपातं मुखं मम ॥७॥

(आत्मगतम्)

इयं बाला नवोद्वाहा सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् ।
कामं धीरस्वभावेयं स्त्रीस्वभावस्तु कातरः ॥८॥

विदूषकः—उइदं तत्तहोदो मअधराअस्स अवरण्हकाले भवंतं अग्गदो करिअ सुहिज्जणदंसणं । सक्कारो हि णाम सक्कारेण पडिच्छिदो पीदिं उप्पादेदि । ता उट्ठेदु दाव भवं । [उचितं तत्रभवतो मगधराजस्यापराह्णकाले

भामिनि सुन्दरि । शरच्छशाङ्कगौरेण शरच्चन्द्रवत् गौरेण शुभ्रेण । वाताविद्धेन वातेन वायुना आविद्धः आक्षिप्तः तेन । काशपुष्पलवेन काश-पुष्पाणां काशकुसुमानां लवेन रेणुना । इदम् । मम । मुखम् आननम् । साश्रुपातम् अश्रुपातेन सह । वर्तते इति शेषः ॥७॥

इयं पद्मावती । बाला अप्रौढा । नवोद्वाहा नवः अचिरान्निर्वृत्तः उद्वाहः परिणयो यस्याः सा । सत्यं तथ्यम् । वासवदत्तास्मृतिजन्योऽयमश्रुपात इति श्रुत्वा निशम्य । व्यथां व्रजेत् व्यथिता स्यात् । कामं नितराम् । इयम् एषा । धीरस्वभावा गम्भीरप्रकृतिः । तु तथापि । स्त्रीस्वभावः स्त्रीणां नारीणां स्वभावः प्रकृतिः । कातरः अधीरः । भवतीति शेषः ॥८॥

राजा—पद्मावती ! शरत्कालीन चन्द्रमा की भाँति उज्ज्वल काश-फूल की धूलि, हवा से उड़कर, मेरी आँखों में आ गिरी है, जिससे मेरा मुख, प्रिये ! आँसुओं से भर गया है ॥७॥

(मन में)

यह बालिका अभी ब्याही है । सच सुनकर इसे दुख होगा । भले ही यह धर्यशालिनी है तो भी स्त्रियों का स्वभाव भीरु होता है ॥८॥

विदूषक—श्रीमान् मगधराज दर्शक ने दिन के अन्तिम भाग में आपको साथ लेकर मित्रों से भेंट करना उचित समझा है । तो अब आप उठिए;

भवन्तमग्रतः कृत्वा सुहृज्जनदर्शनम् । सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति । तदुत्तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—बाढम् । प्रथमः कल्पः । (उत्थाय)

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्त्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः ॥९॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

चतुर्थोऽङ्कः समाप्तः

विशालाना महताम् । गुणानां शौर्यादीनाम् । सत्काराणां सम्मानानाम् । कर्तारः प्रयोजकाः । लोके जगति । नित्यशः सततम् । सुलभाः बहुलं लभ्यन्ते । विज्ञातारः परकृतसत्कारज्ञाः । तु तावत् । दुर्लभाः विरलाः सन्तीति शेषः ॥९॥

क्योंकि यदि आदर का बदला आदर से दिया जाय तो प्रेम बढ़ता है ।

राजा—हाँ, यह ठीक बात है । यह उत्तम प्रस्ताव है । (उठकर)

परोपकार जैसे विशाल सत्कर्म और जन-सम्मान को सदा करने वाले तो संसार में बहुत पाये जाते हैं किन्तु उनके जानकार विरले ही होते हैं ॥९॥

(सब चले जाते हैं)

चतुर्थ अंक समाप्त

———

पञ्चमोऽङ्कः

(ततः प्रविशति पद्मिनिका)

पद्मिनिका—महुअरिए ! महुअरिए ! आअच्छ दाव सिग्घं [मधुकरिके ! मधुकरिके ! आगच्छ तावच्छीघ्रम् ।]

(प्रविश्य)

मधुकरिका—हला ! इअम्हि । किं करीअदु ? [हला ! इयमस्मि किं क्रियताम् ?]

पद्मिनिका—हला !किं ण जाणासि तुवं—भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदेत्ति । [हला ! किं न जानासि त्वं—भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ।]

मधुकरिका—हद्धि ! [हा धिक् !]

पद्मिनिका—हला ! गच्छ सिग्घं, अय्यं अवंतिअं सद्दावेहि । केवलं भट्टिदारिआए सीसवेदणं एव्व णिवेदेहि । तदो सअं एव्व आगमिस्सदि । [हला ! गच्छ शीघ्रम्, आर्यामावन्तिकां शब्दायस्व । केवलं भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनामेव निवेदय । ततः स्वयमेवागमिष्यति ।]

(पद्मिनिका का प्रवेश)

पद्मिनिका—मधुकरिका ! मधुकरिका ! जल्दी आओ ।

(आकर)

मधुकरिका—सखी ! यह मैं आ गई । क्या करना है ?

पद्मिनिका—सखी ! क्या तू नहीं जानती कि राजकुमारी पद्मावती सिर-दर्द से पीड़ित है ?

मधुकरिका—ओह, बहुत बुरा !

पद्मिनिका—सखी ! जल्दी जाओ और आर्या आवन्तिका को बुला लाओ । राजकुमारी के सिर-दर्द की ही बात कहना । वह स्वयं ही चली आवेगी ।

मधुकरिका—हला ! किं सा करिस्सदि ? [हला किं सा करिष्यति ?]

पद्मिनिका—सा खु दाणिं महुराहि कहाहि भट्टिदारिआए सीसवेदणं विणोदेदि । [सा खल्विदानीं मधुराभिः कथाभिर्भर्तृदारिकायाः शीर्षवेदनां विनोदयति ।]

मधुकरिका—जुज्जइ ! कहिं सअणीअं रइदं भट्टिदारिआए ? [युज्यते । कुत्र शयनीयं रचितं भर्तृदारिकायाः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा । गच्छ दाणिं तुवं । अहं वि भट्टिणो णिवेदणात्थं अय्यवसंतअं अण्णेसामि । [समुद्रगृहके किल शय्याऽऽस्तीर्णा । गच्छेदानीं त्वम् । अहमपि भर्तुर्निवेदनार्थमार्यवसन्तकमन्विष्यामि ।]

मधुकरिका—एव्वं होदु । (निष्क्रान्ता) [एवं भवतु ।]

पद्मिनिका—कहिं दाणिं अय्यवसंतअं पेक्खामि ? [कुत्रेदानीमार्यवसन्तकं पश्यामि ?]

(ततः प्रविशति विदूषकः)

विदूषकः—अज्ज खु देवीविओअविहुरहिअअस्स तत्तहोदो वच्छराअस्स पदुमावदीपाणिग्गहणसमीरिअस्स अच्चंतसुहावहे मंगलोस्सवे मदणग्गिदाहो

मधुकरिका—सखी ! वह क्या करेगी ?

पद्मिनिका—वह आकर मधुर कहानियाँ सुनाकर राजकुमारी के सिरदर्द को कम करेगी ।

मधुकरिका—ठीक है । राजकुमारी की सेज कहाँ बिछी है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह में सेज बिछी है । तू अब जा । मैं भी महाराज को सूचित करने के लिए आर्य वसंतक को ढूँढ़ती हूँ ।

मधुकरिका—ठीक है । (चली जाती है)

पद्मिनिका—मैं अब आर्य वसंतक को कहाँ देखूँ ?

(विदूषक का प्रवेश)

विदूषक—देवी वासवदत्ता के वियोग से व्याकुल-हृदय वत्सराज उदयन का कामज्वर पद्मावती के साथ विवाह होने से आज इस अतिसुखदायक

अहिअदरं वड्ढइ । (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि पदुमिणिआ ! पदुमिणिए ! किं इह वत्तदि ? [अद्य खलु देवीवियोगविधुरहृदयस्य तत्रभवतो वत्सराजस्य पद्मावतीपाणिग्रहणसमीरितस्यात्यन्तसुखावहे मङ्गलोत्सवे मदनाग्निदाहोऽधिकतरं वर्धते । (पद्मिनिकां विलोक्य) अयि पद्मिनिका ! पद्मिनिके ! किमिह वर्त्तते ?]

पद्मिनिका—अय्य ! वसंतअ ! किं ण जाणासि तुवं भट्टिदारिआ पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदेत्ति ?[आर्य ! वसन्तक ! किं न जानासि त्वं भर्तृदारिका पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखितेति ?]

विदूषकः—भोदि ! सच्चं ! ण जाणामि । [भवति ! सत्यं न जानामि ।]

पद्मिनिका—तेण हि भट्टिणो णिवेदेहि णं । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवरेमि । [तेन हि भर्त्रे निवेदयैनाम् । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।]

विदूषकः—कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

पद्मिनिका—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्याऽऽस्तीर्णा ।]

विवाहोत्सव में बहुत ही उद्दीप्त हो रहा है । (पद्मिनिका को देखकर) ओह पद्मिनिका ! पद्मिनिका ! क्या बात है ?

पद्मिनिका—आर्य वसंतक ! क्या तुम नहीं जानते कि राजकुमारी पद्मावती सिर-दर्द से पीड़ित है ?

विदूषक—ठीक ! मैं नहीं जानता ।

पद्मिनिका—तुम राजा से यह बात कह देना । मैं भी तब तक सिर का लेप शीघ्र तैयार करती हूँ ।

विदूषक—पद्मावती की सेज कहाँ बिछी है ?

पद्मिनिका—समुद्रगृह में सेज बिछी है ।

विदूषकः—गच्छदु भोदी । जाव अहं वि तत्तहोदो णिवेदइस्सं । [गच्छतु भवती । यावदहमपि तत्रभवते निवेदयिष्यामि ।]

(निष्क्रान्तौ)

[प्रवेशकः]

———

(ततः प्रविशति राजा)

राजा—

श्लाघ्यामवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां
कालक्रमेण पुनरागतदारभारः ।
लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं
तां पद्मिनीं हिमहतामिव चिन्तयामि ॥१॥

कालक्रमेण समयचक्रेण । पुनः भूयः । आगतदारभारः आगतः उपस्थितः दारभारः परिणयरूपा धूः यं सोऽहम् । लावाणके लावाणकग्रामे । हृताङ्गयष्टिम् हृता दग्धा अङ्गयष्टिः तनुलता यस्याः ताम् । श्लाघ्यां स्तुत्याम् । अवन्तिनृपतेः अवन्तिभूपस्य प्रद्योतस्य । सदृशीं गुणैः अनुरूपाम् । तनूजां तनयाम् । तां वासवदत्ताम् । हिमहतां हिमेन तुषारेण हतां विदलिताम् । पद्मिनीं कमलिनीमिव । चिन्तयामि । ध्यायामि स्मरामीत्यर्थः ॥१॥

विदूषक—तुम जाओ । मैं भी राजा को सूचित करता हूँ ।

(दोनों चले जाते हैं)

(प्रवेशक समाप्त)

———

(राजा का प्रवेश)

राजा—कुछ काल के बीत जाने पर फिर से पत्नी के भार को प्राप्त होकर मैं अपने सदृश गुण-रूपवती अवन्तिराज की उस प्रशंसायोग्य कन्या को, जिसके सुन्दर अंग लावाणक में अग्नि द्वारा जल गये, हिम से विनष्ट कमलिनी की भांति याद करता हूँ ॥१॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—तुवरदु तुवरदु दाव भवं । [त्वरतां त्वरतां तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—तत्तहोदी पदुमावदी सीसवेदणाए दुक्खाविदा । [तत्रभवती पद्मावती शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

राजा—कैवमाह ?

विदूषकः—पदुमिणिआए कहिदं । [पद्मिनिकया कथितम् ।]

राजा—भोः ! कष्टम्

रूपश्रिया समुदितां गुणतश्च युक्तां
लब्ध्वा प्रियां मम तु मन्द इवाद्य शोकः ।
पूर्वाभिघातसरुजोऽप्यनुभूतदुःखः
पद्मावतीमपि तथैव समर्थयामि ॥२॥

अद्य इदानीम् । रूपश्रिया रूपस्य सौन्दर्यस्य श्रीः कान्तिः तया । समुदितां समेताम् । गुणतः (सार्वविभक्तिकस्तसिः) गुणैः । युक्तां सम्पन्नाम् । प्रियां पद्मावतीम् । लब्ध्वा प्राप्य । मम मे । शोकः विषादः । मन्द इव न्यून इव ।

(आकर)

विदूषक—जल्दी कीजिए, आप जल्दी कीजिए ।

राजा—क्यों ?

विदूषक—श्रीमती पद्मावती शिरोवेदना से पीड़ित हैं ।

राजा—किसने ऐसा कहा ?

विदूषक—पद्मिनिका ने कहा ।

राजा—बहुत बुरा हुआ ।

मैं पहले ही वासवदत्ता की मृत्यु-रूपी चोट से पीड़ित था । पर रूपशोभा से समुन्नत तथा गुणों से युक्त प्रिया पद्मावती को पाकर आज मेरा शोक मन्द-सा हो गया था; किन्तु पूर्व दुःख के अनुभव से मैं पद्मावती की भी वैसी दशा समझ रहा हूँ । अर्थात् जैसे वासवदत्ता का प्राणान्त हुआ, वैसे पद्मावती का भी अन्त होगा ॥२॥

अथ कस्मिन् प्रदेशे वर्त्तते पद्मावती ?

विदूषकः—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्या-ऽऽस्तीर्णा ।]

राजा—तेन हि तस्य मार्गमादेशय ।

विदूषकः—एदु एदु भवं । [एत्वेतु भवान्]

(उभौ परिक्रामतः)

विदूषकः—इदं समुद्दगिहकं । पविसदु भवं । [इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशतु भवान् ।]

राजा—पूर्वं प्रविश ।

विदूषकः—भो ! तह । (प्रविश्य) अविहा ! चिट्ठदु चिट्ठदु दाव भवं । [भोः ! तथा । (प्रविश्य) अविधा ! तिष्ठतु तिष्ठतु तावद् भवान् ।]

राजा—किमर्थम् ?

विदूषकः—एसो खु दीवप्पभावसूइदरूवो वसुधातले परिवत्तमाणो अग्गं

अभूदिति शेषः । पूर्वः प्राथमिकश्चासौ अभिघातः वासवदत्ताविनाशरूपः वज्रपातः तेन सरुजः रुजा पीडया सह वर्तमानः । अनुभूतदुःखः अनुभूतम् अनुभवविषयीकृतं दुःखं कष्टं येन सोऽहम् । पद्मावतीमपि । तथैव हिमहतां पद्मिनीमिव । समर्थयामि मन्ये ॥२॥

अच्छा पद्मावती कहाँ है ?

विदूषक—समुद्रगृह में सेज बिछी है ।

राजा—तो उसका मार्ग बताओ ।

विदूषक—आइए, आप आइए । (दोनों चलते हैं)

विदूषक—यह समुद्र-गृह है । आप अन्दर चलिए ।

राजा—पहले तुम प्रवेश करो ।

विदूषक—अच्छा (प्रवेश करके), ठहरिए तो, आप ठहरिए ।

राजा—क्यों ?

विदूषक—यह पृथ्वी पर लोटता हुआ सर्प दीपक के प्रकाश में स्पष्ट दीख रहा है ।

काकोदरो। [एष खलु दीपप्रभावसूचितरूपो वसुधातले परिवर्त्तमानोऽयं काकोदरः।]

राजा—(प्रविश्यावलोक्य सस्मितम्) अहो ! सर्पव्यक्तिर्वैधेयस्य।

ऋज्वायतां हि मुखतोरणलोलमालां
भ्रष्टां क्षितौ त्वमवगच्छसि मूर्ख ! सर्पम्।
मन्दानिलेन निशि या परिवर्त्तमाना
किञ्चित्करोति भुजगस्य विचेष्टितानि ॥३॥

विदूषकः—(निरूप्य) सुट्ठु भवं भणादि। ण हु अअं काओअरो। (प्रविश्यावलोक्य) तत्तहोदी पदुमावदी इह आअच्छिअ णिग्गदा भवे। [सुष्ठु भवान् भणति। न खल्वयं काकोदरः। (प्रविश्यावलोक्य) तत्रभवती पद्मावतीहागत्य निर्गता भवेत्।]

ऋज्वायताम् ऋजुः सरला आयता दीर्घा च (विशेषणोभयपदः कर्मधारयः) ताम्। क्षितौ पृथ्व्याम्। भ्रष्टां पतिताम्। मुखतोरणलोलमालां मुखं मुख्यं यत्तोरणं बहिर्द्वारं तत्र या लोला चञ्चला माला स्रक् ताम्। त्वम्। सर्पं भुजगम्। अवगच्छसि मन्यसे। या माला। निशि रात्रौ। मन्दानिलेन मन्दं वहता पवनेन। किञ्चित् ईषत्। परिवर्तमाना विवर्तमाना। भुजगस्य सर्पस्य। विचेष्टितानि गतिभङ्गीनि। करोति वितनोति ॥३॥

राजा—(जाकर, देखकर, हँसकर) अहा ! यह मूर्ख इसे साँप समझ रहा है।

मूर्ख, प्रवेश-द्वार पर लटकती हुई सीधी लम्बी हिलती हुई माला को तू साँप समझ रहा है, जो रात में मन्द वायु के झकोरों से लोट-पोट हो कर कुछ साँप की चेष्टाओं का अनुकरण कर रही है ॥३॥

विदूषक—(सूक्ष्मतया देखकर) आप ठीक कह रहे हैं। निश्चित ही यह सांप नहीं है। (प्रवेश कर और देखकर) श्रीमती पद्मावती जी यहाँ आकर चली गई होंगी।

राजा—वयस्य ! अनागतया भवितव्यम् ।

विदूषकः—कहं भवं जाणादि ? [कथं भवान् जानाति ?]

राजा—किमत्र ज्ञेयम् ? पश्य—

शय्या नावनता तथास्तृतसमा न व्याकुलप्रच्छदा
न क्लिष्टं हि शिरोपधानममलं शीर्षाभिघातौषधैः ।
रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं शोभा न काचित्कृता
प्राणी प्राप्य रुजा पुनर्न शयनं शीघ्रं स्वयं मुञ्चति ॥४॥

शय्या शयनम् । न अनवता न नम्रीभूता । तथा यथापूर्वम् । आस्तृता आस्तरणेन युक्ता । समा अविषमा । वर्तते इति शेषः । व्याकुलः संकुचितः प्रच्छदः निचोलः यस्याः तथाभूता । न अस्तीति शेषः । अमलं स्वच्छम् । शिरोपधानम् उपबर्हणम् । शीर्षाभिघातौषधैः शीर्षाभिघातः शिरोवेदना, तन्निग्रहक्षमैः औषधिविशेषैः । न क्लिष्टं न दूषितम् । रोगे शिरोवेदनायाम् । दृष्टिविलोभनं मनोविनोदम् । जनयितुम् सम्पादयितुम् । काचित् कापि । शोभा कक्षसज्जा । न कृता न विहिता । पुनः भूयः । प्राणी देही । रुजा रोगेण । शयनं शय्याम् । प्राप्य लब्ध्वा । शीघ्रं त्वरितम् । स्वयं स्वतः । न मुञ्चति न परित्यजति ॥४॥

राजा—मित्र, अभी आई नहीं होंगी ।

विदूषक—आप कैसे जानते हैं ?

राजा—इसमें क्या जानना है ? देखो—

सेज दबी नहीं है । जैसी बिछी थी वैसी ही है । कहीं भी सिकुड़न नहीं है । स्वच्छ तकिया भी सिर-दर्द की औषधियों से मैला नहीं हुआ । रोग की दशा में आँखों को लुभाने के लिए कोई सजावट भी नहीं की गई है । फिर रोगी मनुष्य शय्या पर आकर शीघ्र उसे नहीं छोड़ता ॥४॥

विदूषकः—तेण हि इमस्सिं सय्याए मुहुत्तअं उवविसिअ तत्तहोदिं पडिवालेदु भवं। [तेन ह्यस्यां शय्यायां मुहूर्त्तकमुपविश्य तत्रभवतीं प्रतिपालयतु भवान्।]

राजा—बाढम्। (उपविश्य) वयस्य निद्रा मां बाधते। कथ्यतां काचित् कथा।

विदूषकः—अहं कहइस्सं। हों त्ति करेदु अत्तभवं। [अहं कथयिष्यामि। हों इति करोत्वत्रभवान्।]

राजा—बाढम्।

विदूषकः—अत्थि णअरी उज्जइणी णाम। तहिं अहिअरमणीआणि उदअण्हाणाणि वत्तंति किल। [अस्ति नगर्युज्जयिनी नाम। तत्राधिकरमणीयान्युदकस्नानानि वर्त्तन्ते किल।]

राजा—कथमुज्जयिनी नाम ?

विदूषकः—जइ अणभिप्पेदा एसा कहा, अण्णं कहइस्सं [यद्यनभिप्रेतैषा कथा, अन्यां कथयिष्यामि।]

राजा—वयस्य ! न खलु नाभिप्रेतैषा कथा। किन्तु—

विदूषक—तो इस सेज पर क्षण भर बैठकर आप उनकी प्रतीक्षा करें।

राजा—अच्छा (बैठकर) मित्र, मुझे नींद तंग कर रही है। कोई कथा सुनाओ।

विदूषक—मैं सुनाता हूँ। आप हूँ-हूँ करते जाइए।

राजा—अच्छा।

विदूषक—उज्जयिनी नाम की नगरी है। वहाँ स्नान करने के बहुत सुन्दर स्थान हैं।

राजा—क्या उज्जयिनी ?

विदूषक—यदि यह कथा आपको पसन्द नहीं तो मैं दूसरी कथा सुनाता हूँ।

राजा—मित्र ! ऐसा नहीं कि यह कथा मुझे अच्छी नहीं लगती। किन्तु—

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः
प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।
बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं
स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ॥५॥

अपि च—

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया ।
हस्तेन स्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ॥६॥

विदूषकः—भोदु, अण्णं कहइस्सं । अत्थि णअरं बम्हदत्तं णाम । तहिं किल राआ कंपिल्लो णाम । [भवतु, अन्यां कथयिष्यामि । अस्ति नगरं ब्रह्मदत्तं नाम । तत्र किल राजा काम्पिल्यो नाम ।]

प्रस्थानकाले प्रयाणसमये । स्वजनं बन्धुवर्गम् । स्मरन्त्याः ध्यायन्त्याः । स्नेहात् प्रेम्णः । प्रवृत्तम् उद्गतम् । नयनान्तयोः नेत्रापाङ्गयोर्लग्नं सङ्गतम् । बाष्पम् अश्रु । ममैव मदीये एव । उरसि वक्षसि । पातयन्त्याः मुञ्चन्त्याः । अवन्त्याधिपतेः अवन्तिराजस्य । सुतायाः दुहितुः वासवदत्तायाः । स्मरामि चिन्तयामि ॥५॥

उपदेशेषु शिक्षणेषु वीणोपदेशेषु इति यावत् । अपि । बहुशः अनेकवारम् । माम् । ईक्षमाणया । पश्यन्त्या । यया वासवदत्तया । स्रस्तकोणेन स्रस्तः च्युतः कोणः वीणावादनसाधनविशेषो यस्मात् तेन । हस्तेन करेण । आकाशवादितम् आकाशे शून्ये वादितं वादनम् । कृतं विहितम् ॥६॥

चलते समय बन्धुजनों का स्मरण करती हुई अवन्ति-नरेश की पुत्री वासवदत्ता की मुझे याद हो आती है जबकि वह उमड़कर भी नेत्रों के कोने में रुके हुए आँसुओं को प्रेम से मेरी ही छाती पर गिरा रही थी ॥५॥

और भी—

(वीणा बजाने के) शिक्षण में भी कई बार मुझे देखते हुए जिसने हाथ से कोण के गिर जाने पर शून्य में ही खाली हाथ चलाये ॥६॥

विदूषक—अच्छा, दूसरी कथा कहता हूँ । ब्रह्मदत्त नाम का एक नगर है । वहाँ काँपिल्य नाम का राजा है ।

राजा—किमिति किमिति ?

विदूषकः—(पुनस्तदेव पठति)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमित्यभिधीयताम् ।

विदूषकः—किं राआ बम्हदत्तो, णअरं कंपिल्लं ? [किं राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् ?]

राजा—एवमेतत् ।

विदूषकः—तेण हि मुहुत्तअं पडिवालेदु भवं, जाव ओट्ठगअं करिस्सं । राआ बम्हदत्तो णअरं कंपिल्लं । (इति बहुशस्तदेव पठति) । इदाणिं सुणादु भवं । अयि ! सुत्तो अत्तभवं ? अदिसीदला इअं वेला । अत्तणो पावारअं गण्हिअ आअमिस्सं । [तेन हि मुहूर्त्तकं प्रतिपालयतु भवान्, यावदोष्ठगतं करिष्यामि । राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यम् । (इति बहुशस्तदेव पठति) । इदानीं शृणोतु भवान् । अयि सुप्तोऽत्रभवान् । अतिशीतलेयं वेला । आत्मनः प्रावारकं गृहीत्वाऽऽगमिष्यामि ।] (निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति वासवदत्ता आवन्तिकावेषेण चेटी च)

चेटी—एदु एदु अय्या । दिढं खु भट्टिदारिआ सीसवेदणाए दुक्खाविदा ।

राजा—क्या, क्या ?

विदूषक—(फिर वही कहता है)

राजा—मूर्ख ! राजा ब्रह्मदत्त और नगर काँपिल्य—ऐसा कहो ।

विदूषक—क्या राजा ब्रह्मदत्त और नगर काँपिल्य ?

राजा—हाँ, ऐसा ही है ?

विदूषक—तो कुछ समय ठहरो, तबतक मैं इसे कण्ठस्थ कर लूँ—राजा ब्रह्मदत्त और नगर काँपिल्य । (कई बार इसी को कहकर) अब आप सुनिए ! ओह आप तो सो गये । इस समय बहुत शीत है । मैं ओढ़ने की चादर लेकर आता हूँ ।

(आवन्तिका के वेष में वासवदत्ता और एक दासी का प्रवेश)

चेटी—आर्या ! इधर आइए, इधर आइए । राजकुमारी सिर-दर्द से

[एत्वेत्वार्या । दृढं खलु भर्तृदारिका शीर्षवेदनया दुःखिता ।]

वासवदत्ता—हद्धि ! कहिं सअणीअं रइदं पदुमावदीए ? [हा धिक् ! कुत्र शयनीयं रचितं पद्मावत्याः ?]

चेटी—समुद्दगिहके किल सेज्जात्थिण्णा । [समुद्रगृहके किल शय्याऽऽस्तीर्णा ।]

वासवदत्ता—तेण हि अग्गदो याहि । [तेन ह्यग्रतो याहि ।]

(उभे परिक्रामतः)

चेटी—इदं समुद्दगिहकं । पविसदु अय्या । जाव अहं वि सीसाणुलेवणं तुवारेमि । [इदं समुद्रगृहकम् । प्रविशत्वार्या । यावदहमपि शीर्षानुलेपनं त्वरयामि ।] (निष्क्रान्ता)

वासवदत्ता—अहो ! अकरुणा खु इस्सरा मे । विरहपय्युस्सुअस्स अय्यउत्तस्स विस्समत्थाणभूदा इअं वि णाम पदुमावदी अस्सत्था जादा । जाव पविसामि । (प्रविश्यावलोक्य) अहो ! परिजणस्स प्रमादो । अस्सत्थं पदुमावदिं केवलं दीवसहाअं करिअ परित्तजदि । इअं पदुमावदी ओसुत्ता । जाव उव-

---

बहुत ही दुखी हैं ।

वासवदत्ता—बहुत कष्ट ! पद्मावती की सेज कहाँ बिछी है ?

चेटी—समुद्रगृह में सेज बिछी है ।

वासवदत्ता—तो आगे चलो । (दोनों चलती हैं)

चेटी—यह समुद्रगृह है । आप भीतर चलें । तबतक मैं भी सिर-दर्द का लेप जल्दी से तैयार करूँ । (चली जाती है)

वासवदत्ता—हाय ! देवता मुझपर निर्दय हो रहे हैं । मेरे वियोग से उत्कंठित आर्यपुत्र के मनोविनोद का एकमात्र साधन पद्मावती भी अस्वस्थ हो गई । अच्छा, मैं भीतर चलूँ । (भीतर जाकर और देखकर) ओह ! सेवकों की असावधानी, जो कि पद्मावती को दीपक के सहारे अकेला छोड़कर चले गये

विसामि । अहव अञ्ञासणपरिग्गहेण अप्पो विअ मिणेहो पडिभादि । ता इमस्सिं सय्याए उवविसामि । (उपविश्य) किं णु हु एदाए सह उवविसंतीए अज्ज पल्हादिदं विअ मे हिअअं । दिट्ठिआ अविच्छिण्णसुहणिस्सासा । णिव्वुत्तरोआए होदव्वं । अहव एअदेससंविभाअदाए सअणीअस्स सुएदि मं आलिंगेहि त्ति । जाव सइस्सं ।(शयनं नाटयति)[अहो ! अकरुणाः खल्वीश्वरा मे । विरहपर्युत्सुकस्यार्यपुत्रस्य विश्रमस्थानभूतेयमपि नाम पद्मावत्यस्वस्था जाता । यावत् प्रविशामि । (प्रविश्यावलोक्य) अहो ! परिजनस्य प्रमादः । अस्वस्थां पद्मावतीं केवलं दीपसहायां कृत्वा परित्यजति । इयं पद्मावत्यवसुप्ता । यावदुपविशामि । अथवाऽन्यासनपरिग्रहेणाऽल्प इव स्नेहः प्रतिभाति । तदस्यां शय्यायामुपविशामि । (उपविश्य) किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् । दिष्ट्याऽविच्छिन्नसुखनिःश्वासा । निवृत्तरोगया भवितव्यम् । अथवैकदेशसंविभागतया शयनीयस्य सूचयति मामालिङ्गेति । यावच्छयिष्ये ।]

राजा—(स्वप्नायते) हा वासवदत्ते !

वासवदत्ता—(सहसोत्थाय) हं ! अय्यउत्तो, ण हु पदुमावदी ? किं णु खु दिट्ठम्हि ? महंतो खु अय्यजोअंधराअणस्स पडिण्णाहारो मम दंसणेण णिप्फलो संवुत्तो । [हम् ! आर्यपुत्रः, न खलु पद्मावती ? किन्नु खलु दृष्टास्मि ? महान् खल्वार्ययौगन्धरायणस्य प्रतिज्ञाभारो मम दर्शनेन निष्फलः संवृत्तः ।]

हैं । पद्मावती सोई है । तो मैं बैठती हूँ । अथवा यदि मैं किसी दूसरे आसन पर बैठी तो ऐसा मालूम होगा कि पद्मावती के प्रति मेरा प्रेम कम है । अतः इसी शय्या पर बैठ जाऊँ । (बैठकर) क्यों आज इसके साथ बैठते हुए मेरा हृदय प्रसन्न-सा हो रहा है । सौभाग्य से यह सुख से स्वांस ले रही है । प्रतीत होता है कि यह नीरोग हो गई है । अथवा सेज पर एक ओर सोने से मुझे कह रही है कि तू मुझे आलिंगन कर । अच्छा, मैं सो जाऊँ ।(सो जाती है ।)

राजा—(स्वप्न में) हा वासवदत्ता !

वासवदत्ता—(सहसा उठकर) हँ, यह तो आर्यपुत्र हैं, पद्मावती नहीं । क्या मुझे देख लिया ? तब तो आर्य यौगन्धरायण का महान् प्रयास मेरे दर्शन से विफल हो गया ।

राजा—हा ! अवन्तिराजपुत्रि !

वासवदत्ता—दिट्ठिआ सिविणाअदि खु अय्यउत्तो । ण एत्थ कोच्चि जणो । जाव मुहुत्तअं चिट्ठिअ दिट्ठिं हिअअं च तोसेमि । [दिष्ट्या स्वप्नायते खल्वार्यपुत्रः । नात्र कश्चिज्जनः । यावन्मुहूर्त्तकं स्थित्वा दृष्टिं हृदयं च तोषयामि ।]

राजा—हा ! प्रिये ! हा ! प्रियशिष्ये ! देहि मे प्रतिवचनम् ।

वासवदत्ता—आलवामि भट्टा ! आलवामि । [आलपामि भर्त्तः ! आलपामि ।]

राजा—किं कुपितासि ?

वासवदत्ता—णहि णहि, दुक्खिदम्हि । [नहि नहि, दुःखितास्मि]

राजा—यद्यकुपिता, किमर्थं नालङ्कृतासि ?

वासवदत्ता—इदो वरं किम् ? [इतः परं किम् ?]

राजा—किं विरचिकां स्मरसि ?

वासवदत्ता—(सरोषम्) आ अवेहि, इहावि विरचिआ ? [आ अपेहि, इहापि विरचिका ?]

राजा—हा अवन्तिराजपुत्री !

वासवदत्ता—सौभाग्य से आर्यपुत्र स्वप्न में बोल रहे हैं । यहाँ कोई मनुष्य नहीं । थोड़ी देर ठहर कर दृष्टि और हृदय को प्रसन्न कर लूँ ।

राजा—हा प्रिये ! हा प्रियशिष्ये ! मुझे उत्तर दो ।

वासवदत्ता—उत्तर देती हूँ, स्वामिन् ! उत्तर देती हूँ ।

राजा—क्या तुम रुष्ट हो ?

वासवदत्ता—नहीं, नहीं, मैं दुःखित हूँ ।

राजा—यदि रुष्ट नहीं हो तो तुमने गहने क्यों नहीं पहने ?

वासवदत्ता—और क्या ?

राजा—क्या तुझे विरचिका की याद आ रही है ?

वासवदत्ता—(क्रोध में) हट, क्या यहाँ भी विरचिका ?

राजा—तेन हि विरचिकार्थं भवतीं प्रसादयामि ।

(हस्तौ प्रसारयति)

वासवदत्ता—चिरं ठिदम्हि । कोपि मं पेक्खे । ता गमिस्सं । अहव सय्यापलंबिअं अय्यउत्तस्स हत्थं सअणीए आरोविअ गमिस्सं । (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता) [चिरं स्थितास्मि । कोऽपि मां पश्येत् । तद् गमिष्यामि । अथवा शय्याग्रलम्बितमार्यपुत्रस्य हस्तं शयनीय आरोप्य गमिष्यामि ।] (तथा कृत्वा निष्क्रान्ता ।)

राजा—(सहसोत्थाय) वासवदत्ते ! तिष्ठ तिष्ठ । हा धिक् ।

निष्क्रामन् सम्भ्रमेणाहं द्वारपक्षेण ताडितः ।
ततो व्यक्तं न जानामि भूतार्थोऽयं मनोरथः ॥७॥

(प्रविश्य)

विदूषकः—अइ ! पडिबुद्धो अत्तभवं । [अयि प्रतिबुद्धोऽत्रभवान् ।]

सम्भ्रमेण त्वरया । निष्क्रामन् निर्गच्छन् समुद्रगृहकक्षादिति शेषः । अहं द्वारपक्षेण पार्श्वेन । ताडितः प्रतिहतः । अभूवमिति शेषः । ततः तस्मात् कारणात् । अयं वासवदत्तासमागमः । भूतार्थः यथार्थः । अथवा । मनोरथः मनोऽभिलाषः । व्यक्तं स्पष्टम् । न जानामि नावगच्छामि ॥७॥

राजा—तो विरचिका के लिए मैं तुझे मनाता हूँ । (हाथ फैलाता है ।)

वासवदत्ता—मैं देर तक ठहर गई । कोई भी मुझे देख लेगा । तो मैं चल दूँ । अथवा सेज से लटकते हुए आर्यपुत्र के हाथ को सेज पर रखकर चलूँ । (वैसा करके चली जाती है ।)

राजा—(सहसा उठकर) वासवदत्ता ! ठहरो, ठहरो । हा ! मैं सहसा निकलता हुआ द्वार के किनारे से टकरा गया । मैं स्पष्ट नहीं जानता कि यह घटना सत्य है या मेरे मन का सङ्कल्प है ॥७॥

(प्रवेश करके)

विदूषक—आप जाग गये ?

राजा—वयस्य ! प्रियमावेदये, धरते खलु वासवदत्ता ।

विदूषकः—अविहा वासवदत्ता ? कहिं वासवदत्ता ? चिरा खु उवरदा वासवदत्ता । [अविधा वासवदत्ता ? कुत्र वासवदत्ता ? चिरात् खलूपरता वासवदत्ता ।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

शय्यायामवसुप्तं मां बोधयित्वा सखे ! गता ।
दग्धेति ब्रुवता पूर्वं वञ्चितोस्मि रुमण्वता ॥८॥

विदूषकः—अविहा ! असंभावणीअं एदं ण । आ उदअण्हाणसंकित्तणेण तत्तहोदिं चिंतअंतेण सा सिविणे दिट्ठा भवे ।[अविधा ! असम्भावनीयमेतन्न । आ ! उदकस्नानसङ्कीर्त्तनेन तत्रभवतीं चिन्तयता सा स्वप्ने दृष्टा भवेत् ।

राजा—एवम्, मया स्वप्नो दृष्टः ?

सखे मित्र ! शय्यायां शयनीये । अवसुप्तं शयितम् । माम् । बोधयित्वा जागरयित्वा । गता निष्क्रान्ता । समुद्रगृहकक्षादिति शेषः । दग्धा ज्वलिता । इति एवम् । पूर्वं तदा । ब्रुवता कथयता । रुमण्वता तन्नाम्ना अमात्येन । अहम् । वञ्चितः विप्रलब्धः । अस्मि ॥८॥

राजा—मित्र ! मैं तुम्हें हर्ष की बात कहता हूँ, वासवदत्ता निश्चित ही जीवित है ।

विदूषक—हा ! वासवदत्ता ! कहाँ वासवदत्ता ? कई दिन पहले वे मर गईं ।

राजा—मित्र ! ऐसा मत कहो ।

मित्र, सेज पर सोये मुझे जगाकर वे चली गईं । पहले 'वासवदत्ता जल गईं' यह कह कर रुमण्वान् ने मुझे ठग लिया ॥८॥

विदूषक—हा ! यह हो सकता है । हाँ, मैंने उदकस्नानों की चर्चा की थी, उसी से वासवदत्ता की याद करते-करते आपने उसे स्वप्न में देख लिया हो ।

राजा—ऐसा ! क्या मैंने स्वप्न देखा ?

यदि तावदयं स्वप्नो धन्यमप्रतिबोधनम् ।
अथायं विभ्रमो वा स्याद् विभ्रमो ह्यस्तु मे चिरम् ॥९॥

विदूषकः—भो वअस्स ! एदस्सि णअरे अंवतिसुन्दरी णाम जक्खिणी पडिवसदि । सा तुए दिट्ठा भवे । [भो वयस्य एतस्मिन् नगरेऽवन्तिसुन्दरी नाम यक्षी प्रतिवसति । सा त्वया दृष्टा भवेत् ।]

राजा—न न,

स्वप्नस्यान्ते विबुद्धेन नेत्रविप्रोषिताञ्जनम् ।
चारित्रमपि रक्षन्त्या दृष्टं दीर्घालकं मुखम् ॥१०॥

यदि चेत्, तावत् (वाक्यालङ्कारे)। अयम् एषः । स्वप्नः, स्यात् इति शेषः । तर्हि अप्रतिबोधनम् अजागरणम् । धन्यं प्रशस्तम् । अथवा—पक्षान्तरे । अयम् एषः वासवदत्तासङ्गमः । विभ्रमः भ्रान्तिः । स्यात् भवेत् । (तर्हि) मे मम । चिरं चिरकालम् । विभ्रमः बुद्धिभ्रमः । हि एव । अस्तु तिष्ठतु ॥९॥

स्वप्नस्य स्वापस्य । अन्ते अवसाने । विबुद्धेन जागरितेन । (मया) चारित्रं सच्चरित्रताम् । अपि । रक्षन्त्याः पालयन्त्याः (वासवदत्तायाः)। नेत्रविप्रोषिताञ्जनं नेत्राभ्यां नयनाभ्यां विप्रोषितं दूरीकृतम् अञ्जनं कज्जलं यस्मिन् तत् । दीर्घाः लम्बमानाः अलकाः कुन्तलाः यस्मिन् तत् । मुखं वदनम् । दृष्टम् अवलोकितम् ॥१०॥

यदि यह स्वप्न था तो सोते रहना ही अच्छा था । यदि यह बुद्धिभ्रम है तो मुझे यह भ्रम ही चिरकाल तक बना रहे ॥९॥

विदूषक—मित्र ! इस नगर में अवन्तिसुन्दरी नाम की एक यक्षिणी रहती है । आपने उसे देखा होगा ।

राजा—नहीं, नहीं ।

स्वप्न के बाद जब मैं जाग गया तब मैंने स्त्री-धर्म का पालन करने वाली वासवदत्ता का मुख देखा, जो लंबे-लंबे बालों से ढका था और जहाँ आँखों में काजल नहीं था ॥१०॥

अपि च वयस्य ! पश्य पश्य—

योऽयं सन्त्रस्तया देव्या तया बाहुर्निपीडितः ।
स्वप्नेऽप्युत्पन्नसंस्पर्शो रोमहर्षं न मुञ्चति ॥११॥

विदूषकः—मा दारिणं भवं अणत्थं चिंतिअ । एदु एदु भवं । चउस्साल पविसामो । [मेदानीं भवाननर्थं चिन्तयित्वा । एत्वेतु भवान् । चतुःशालं प्रविशावः ।]

(प्रविश्य)

काञ्चुकीयः—जयत्वार्यपुत्रः । अस्माकं महाराजो दर्शको भवन्तमाह-एष खलु भवतोऽमात्यो रुमण्वान् महता बलसमुदायेनोपयातः खल्वारुणिमभिघातयितुम् । तथा हस्त्यश्वरथपदातीनि मामकानि विजयाङ्गानि सन्नद्धानि । तदुत्तिष्ठतु भवान् । अपि च—

सन्त्रस्तया भीतया । तया देव्या वासवदत्तया । योऽयम् । बाहुः भुजः । निपीडितः दृढं गृहीतः । सः भुजः । स्वप्नेऽपि निद्रायामपि । उत्पन्नसंस्पर्शः उत्पन्नः सञ्जातः संस्पर्शः सम्पर्को यस्य तादृशः । अद्यापि अधुनापि । रोमहर्षं रोमाञ्चम् । न मुञ्चति न त्यजति ॥११॥

और भी—मित्र ! देखो, देखो ।

भय से भीत होकर उस देवी ने जो मेरा हाथ पकड़ा, वह निद्रा में भी स्पर्श होने से अभी तक रोमांचित ही है ॥११॥

विदूषक—अब आप व्यर्थ की बातें मत सोचिए । इधर आइए, इधर आइए । चौसाल भवन को चलें ।

(प्रवेश कर)

कञ्चुकी—जय हो महाराज ! हमारे महाराज दर्शक ने आपसे कहा है कि यह आपका मन्त्री रुमण्वान् भारी सेना लेकर आरुणि पर आक्रमण करने चला है । मेरी भी विजय सेना—हाथी, रथ, पैदल—शस्त्रास्त्र से सज्जित है । तो अब आप उठ खड़े हों ।

और भी—

भिन्नास्ते रिपवो भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः
पार्ष्णीं यापि भवत्प्रयाणसमये तस्या विधानं कृतम् ।
यद् यत् साध्यमरिप्रमाथजननं तत्तन्मयानुष्ठितं
तीर्णा चापि बलैर्नदी त्रिपथगा वत्साश्च हस्ते तव ॥१२॥

राजा—(उत्थाय) बाढम्—अयमिदानीम्,

उपेत्य नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णं ।
तमारुणिं दारुणकर्मदक्षम् ।

ते तव । रिपवः अरयः । भिन्नाः गूढोपायैः भेदं प्रापिताः । भवद्गुणरताः भवतः श्रीमतः गुणेषु दयादाक्षिण्यादिषु रताः अनुरक्ताः । पौराः पुरवासिनः जना इत्यर्थः । समाश्वासिताः सान्त्विताः । अपि तथा । भवत्प्रयाणसमये भवतः यात्रावेलायाम् । या । पार्ष्णीं पृष्ठसेना । तस्याः पृष्ठसेनायाः । विधानं सम्यक् रचनम् । कृतं विहितम् । अरिप्रमाथजननम् अरीणां शत्रूणां प्रमाथः विध्वंसः तस्य जननम् उत्पादकम् । यद् यत्कार्यम् । साध्यं करणीयम् । आसीदिति शेषः । तत्तत्कार्यम् । मया दर्शकेन । अनुष्ठितं सम्पादितम् । अपि च अन्यच्च । बलैः सैनिकैः । त्रिपथगा गङ्गा । नदी सरित् । तीर्णा लङ्घिता । वत्साः वत्सदेशाः । तव भवतः । करे हस्ते भवदधीनाः सञ्जाता इत्यर्थः । ज्ञायतामिति शेषः ॥१२॥

आपके शत्रु नष्ट कर दिये गए । आपके गुणों पर अनुरक्त नागरिकों को भी पूरा आश्वासन दे दिया गया । आपकी रणयात्रा के समय पृष्ठ-रक्षिणी सेना का भी प्रबन्ध कर दिया गया । शत्रु-विनाश के लिए जिन-जिन वस्तुओं की अपेक्षा थी, उन्हें भी जुटा लिया । सेना ने गंगा को भी पार कर लिया । अब वत्सराज्य आपके हाथ में ही है ॥१२॥

राजा—(ऊ कर)—अच्छा, यह मैं अब जाकर हिंसात्मक क्रूर कर्म में चतुर उस आरुणि को विशाल हाथियों और घोड़ों से पार किये गये और

विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे
महार्णवाभे युधि नाशयामि ॥१३॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

पञ्चमोऽङ्कः समाप्तः ।

नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे नागेन्द्राः हस्तिवराः, तुरङ्गा अश्वाः, तैः तीर्णे कृतसञ्चारे । विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे विकीर्णा इतस्ततः प्रक्षिप्ताः बाणाः शराः उग्राः भीषणाः तरङ्गभङ्गाः तरङ्गाणाम् ऊर्मीणां भङ्गा लहर्य इव यस्मिंस्तादृशे । महार्णवाभे महार्णवस्य महासागरस्य आभा शोभा इव आभा शोभा यस्य तादृशे । युधि संग्रामे । दारुणकर्मदक्षम्—दारुणेषु भीषणेषु कर्मसु कार्येषु दक्षं निपुणम् । तम् आरुणिम् । उपेत्य प्राप्य । नाशयामि उन्मूलयामि ॥१३॥

चलाये हुए बाण-रूपी भयंकर लहरों वाले, महासागर के समान दीख रहे रण में नष्ट करता हूँ ॥१३॥

(सब चले जाते हैं ।)

पाँचवाँ अंक समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयः)

काञ्चुकीयः—क इह भोः ! काञ्चनतोरणद्वारमशून्यं कुरुते ?

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—अय्य ! अहं विजआ । किं करीअदु? [आर्य ! अहं विजया । किं क्रियताम् ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यतां निवेद्यतां वत्सराज्यलाभप्रवृद्धोदयायोदयनाय—एष खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषिताऽऽर्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थिताविति ।

प्रतीहारी—अय्य ! अदेसकालो पडिहारस्स । [आर्य ! अदेशकालः प्रतीहारस्य ।]

काञ्चुकीयः—कथमदेशकालो नाम ?

(कञ्चुकी का प्रवेश)

कंचुकी—अरे ! सुवर्ण बहिद्वार पर कौन खड़ा है ?

(आकर)

प्रतीहारी—आर्य ! मैं विजया खड़ी हूँ । क्या आदेश है ?

कंचुकी—श्रीमती जी ! वत्सराज्य की प्राप्ति से विशेष समृद्धि को प्राप्त महाराज उदयन से आप कहें कि महाराज महासेन के पास से रैभ्य सगोत्र कंचुकी एवं आदरणीय अंगारवती द्वारा प्रेषित, वासवदत्ता की धाय, वसुन्धरा दोनों द्वार पर खड़े हैं ।

प्रतीहारी—आर्य ! द्वारपाल द्वारा राजा को कहने का यह उचित स्थान एवं समय नहीं है ।

कंचुकी—स्थान और समय कैसे उचित नहीं ?

प्रतीहारी—सुणादु अय्यो । अज्ज भट्टिणो सुय्यामुहप्पासादगदेण केण वि वीणा वादिदा । तं च सुणिअ भट्टिणा भणिअं—घोसवदीए सद्दो विअ सुणीअदि त्ति । [श्रृणोत्वार्यः । अद्य भर्त्तुः सूर्यामुखप्रासादगतेन केनापि वीणा वादिता । तां च श्रुत्वा भर्त्रा भणितम्—घोषवत्याः शब्द इव श्रूयते इति ।]

काञ्चुकीयः—ततस्ततः ?

प्रतीहारी—तदो तहिं गच्छिअ पुच्छिदो—'कुदो इमाए वीणाए आगमो' त्ति । तेण भणिअं—'अम्हेहिं णम्मदातीरे कुच्चगुम्मलग्गा दिट्ठा । जइ प्पओअणं इमाए उवणीअदु भट्टिणोत्ति । तं च उवणीदं अंके करिअ मोहं गदो भट्टा । तदो मोहप्पच्चागदेण बप्फपय्याउलेण मुहेण भट्टिणा भणिअं—दिट्ठासि घोसवदि ! सा हु ण दिस्सदित्ति । अय्य ! ईदिसो अणवसरो । कहं णिवेदेमि ? [ततस्तत्र गत्वा पृष्टः—कुतोऽस्या वीणाया आगम इति । तेन भणितम्—अस्माभिर्नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा । यदि प्रयोजनमनया, उपनीयतां भर्त्रे इति । तां चोपनीतामङ्के कृत्वा मोहं गतो भर्त्ता । ततो मोहप्रत्यागतेन बाष्पपर्याकुलेन मुखेन भर्त्रा भणितम्—दृष्टासि घोषवति ! सा खलु न दृश्यत इति । आर्य ! ईदृशोऽनवसरः । कथं निवेदयामि ?]

काञ्चुकीयः—भवति ! निवेद्यताम् । इदमपि तदाश्रयमेव ।

प्रतीहारी—आप सुनिए । आज महाराज के सूर्यामुख महल में जाकर किसी ने वीणा बजाई । उसे सुनकर महाराज बोले—'घोषवती का-सा शब्द सुनाई देता है ।'

कंचुकी—फिर क्या हुआ ?

प्रतीहारी—तब, वहाँ जाकर उन्होंने उससे पूछा "यह वीणा कहाँ मिली ?" उसने कहा कि मैंने इसे नर्मदा के तट पर कुशा की झाड़ी में पड़ी पाया । यदि आपको यह वीणा चाहिए तो आप इसे लेलें । तब उसे गोद में लेकर महाराज मूर्छित हो गये । जब उनकी मूर्छा हटी तब उन्होंने आँसू-भरे मुँह से कहा—"घोषवती ! तुझे तो देख लिया, किन्तु वह तो नहीं दीख पड़तीं ।" इसलिए यह उचित अवसर नहीं है । मैं कैसे समाचार दूँ ?

कंचुकी—श्रीमती, कहिए, इसका भी उसीसे सम्बन्ध है ।

प्रतीहारी—अय्य ! इअं णिवेदेमि । एसो भट्टा सुय्यामुहप्पासादादो ओदरइ । ता इह एव्व णिवेदइस्सं । [आर्य ! इयं निवेदयामि । एष भर्त्ता सूर्यामुखप्रासादादवतरति । तदिहैव निवेदयिष्यामि ।]

काञ्चुकीयः—भवति ! तथा ।

(उभौ निष्क्रान्तौ)

(मिश्रविष्कम्भकः)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

राजा—

श्रुतिसुखनिनदे ! कथं नु देव्याः
स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता ।
विहगगणरजोविकीर्णदण्डा
प्रतिभयमध्युषिताऽस्यरण्यवासम् ॥१॥

श्रुतिसुखनिनदे श्रुत्योः कर्णयोः सुखः मधुरः निनदः नादो यस्यास्तादृशे । देव्याः वासवदत्तायाः । स्तनयुगले कुचयुगले । जघनस्थले कटिभागे च । सुप्ता शयनं प्राप्ता । विहगगणरजोविकीर्णदण्डा विहगगणस्य पक्षियूथस्य रजसा मलेन विकीर्णो व्याप्तो दण्डो यस्याः सा । त्वम् । प्रतिभयं भयङ्करम् । अरण्यवासं वनवासम् । कथन्नु केन प्रकारेण । अध्युषितासि आश्रितवत्यसि ॥१॥

प्रतीहारी—आर्य ! मैं निवेदन करती हूँ । महाराज सूर्यामुख महल से उतर रहे हैं । अतः यहीं पर कहूँगी ।

कंचुकी—श्रीमती, अच्छा ।

(दोनों चले जाते हैं)

(मिश्र विष्कम्भक समाप्त)

(राजा और विदूषक का प्रवेश)

राजा—अरी कर्णप्रिय स्वरवती वीणा ! तू तो देवी वासवदत्ता के स्तनों और जाँघों पर सोती थी । अब पक्षियों के मल से लिप्तदण्ड होकर इस भयंकर वनप्रदेश में कैसे रहती हो ? ॥१॥

अपि च, अस्निग्धाऽसि घोषवति ! या तपस्विन्या न स्मरसि—

श्रोणिसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि
खेदस्तनान्तरसुखान्युपगूहितानि ।
उद्दिश्य मां च विरहे परिदेवितानि
वाद्यान्तरेषु कथितानि च सस्मितानि ॥२॥

विदूषकः—अलं दाणिं भवं अदिमत्तं संतप्पिअ । [अलमिदानीं भवानतिमात्रं सन्तप्य ।]

राजा—वयस्य ! मा मैवम्,

चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः ।
तां तु देवीं न पश्यामि यस्या घोषवती प्रिया ॥३॥

श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि श्रोण्या जघनेन समुद्वहनं धारणं तानि, पार्श्वयोः उभयपृष्ठयोः निपीडितं संस्पर्शनं तानि । खेदे श्रमे सति । स्तनान्तरसुखानि स्तनान्तरे कुचमध्ये सुखकराणि । उपगूहितानि आलिङ्गनानि । विरहे परिदेवितानि विलापवचनानि । वाद्यान्तरेषु वीणावादनप्रकारेषु । सस्मितानि मन्दहासयुतानि । कथितानि प्रशंसावचनानि (न स्मरसि) ॥२॥

चिरं चिरकालम् । प्रसुप्तः अप्रतिबुद्धः । मे मम । कामः अभिलाषः । वीणया घोषवत्या । प्रतिबोधितः उद्बोधितः । यस्याः वासवदत्तायाः । इयं पुरोवर्तिनी । घोषवती वीणा । प्रिया प्रीतिप्रदा । आसीत् । तां देवीं वासवदत्ताम् । तु तावत् । न पश्यामि न प्रेक्षे ॥३॥

और भी, घोषवती ! तू बहुत ही स्नेहहीन है, जो तू उस बेचारी का तुझे जाँघों पर उठाना, बगल में दबाना, थक जाने पर सुख से स्तनों के बीच रखना, मेरे विरह में रोना, बाजों के बजते-बजते हँस-हँसकर मुझसे बातें करना आदि सब बातों को भूल गई है ॥२॥

विदूषक—अब आप अधिक सन्ताप न करें ।

राजा—मित्र, ऐसा न कहो ।

बहुत दिनों से सोये पड़े मेरे प्रेम को वीणा ने जगा दिया । किन्तु जिसे यह वीणा अतिप्यारी थी, उस देवी को मैं नहीं देख रहा हूँ ॥३॥

वसन्तक ! शिल्पिजनसकाशान्नवयोगां घोषवतीं कृत्वा शीघ्रमानय ।

विदूषकः—जं भवं आणवेदि । [यद् भवानाज्ञापयति ।]

(वीणां गृहीत्वा निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा । एसो खु महासेणस्स सआसादो रैब्भसगोत्तो कंचुईओ देवीए अंगारवदीए पेसिदा अय्या वसुंधरा णाम वासवदत्ताधत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा । [जयतु भर्त्ता ! एषा खलु महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः काञ्चुकीयो देव्याऽङ्गारवत्या प्रेषिताऽऽर्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ।]

राजा—तेन हि पद्मावती तावदाह्वयताम् ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्त्ताऽऽज्ञापयति]

(निष्क्रान्ता)

राजा—किन्नु खलु शीघ्रमिदानीमयं वृत्तान्तो महासेनेन विदितः ?

(ततः प्रविशति पद्मावती प्रतीहारी च)

प्रतीहारी—एदु एदु भट्टिदारिआ ! [एत्वेतु भर्तृदारिका !]

वसन्तक ! घोषवती को कारीगरों से ठीक कराकर ले आओ ।

विदूषक—जैसी आपकी आज्ञा । (वीणा लेकर चला जाता है ।)

(आकर)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो ! महासेन के पास से यह रैभ्य सगोत्र कंचुकी और देवी अङ्गारवती द्वारा भेजी गई वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा —दोनों द्वारपाल के पास खड़े हैं ।

राजा—तब पद्मावती को बुला लाओ ।

प्रतीहारी—जैसी आपकी आज्ञा । (चली जाती है ।)

राजा—क्या महासेन ने यह समाचार शीघ्र ही जान लिया ?

(पद्मावती और प्रतीहारी का प्रवेश)

प्रतीहारी—राजकुमारी ! इधर आइए, इधर आइए ।

पद्मावती—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—पद्मावति ! किं श्रुतम्—महासेनस्य सकाशाद् रैभ्यसगोत्रः कांचुकीयः प्राप्तः, तत्रभवत्या चाङ्गारवत्या प्रेषितार्या वसुन्धरा नाम वासवदत्ताधात्री च प्रतीहारमुपस्थितावेति ।

पद्मावती—अय्यउत्त ! पिअं मे जादिकुलस्स कुसलवुत्तंतं सोदुं । [आर्यपुत्र ! प्रियं मे ज्ञातिकुलस्य कुशलवृत्तान्तं श्रोतुम् ।]

राजा—अनुरूपमेतद् भवत्याऽभिहितम्—वासवदत्तास्वजनो मे स्वजन इति । पद्मावति ! आस्यताम् । किमिदानीं नास्यते ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! किं मए सह उवविट्ठो एदं जणं पेक्खिस्सदि ? [आर्यपुत्र ! किं मया सहोपविष्ट एतं जनं प्रेक्षिष्यते ?]

राजा—कोऽत्र दोषः ?

पद्मावती—अय्यउत्तस्स अवरो परिग्गहो त्ति उदासीणं विअ होदि । [आर्यपुत्रस्यापरः परिग्रह इत्युदासीनमिव भवति ।]

पद्मावती—आर्यपुत्र की जय हो ।

राजा—पद्मावती ! क्या तुमने सुना कि महासेन के पास से रैभ्यसगोत्र कंचुकी और महारानी अंगारवती द्वारा भेजी गई वासवदत्ता की धाय वसुन्धरा द्वारपाल के पास खड़े हैं ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! बन्धुजनों का कुशल-समाचार सुनना मुझे प्रिय है।

राजा—आपने यह उचित कहा है कि वासवदत्ता के बन्धुजन मेरे बन्धुजन हैं । पद्मावती ! बैठो, इस समय तुम क्यों नहीं बैठती ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! क्या आप मेरे साथ बैठकर उनसे मिलेंगे ?

राजा—इसमें क्या बुरा है ?

पद्मावती—आर्यपुत्र का यह दूसरा विवाह है ऐसा सोचकर उन्हें बुरा लगेगा ।

राजा—कलत्रदर्शनार्हं जनं कलत्रदर्शनात् परिहरतीति बहुदोषमुत्पादयति। तस्मादास्यताम्।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि। (उपविश्य) अय्यउत्त! तादो वा अंबा वा किं णु भणिस्सदि त्ति आविग्गा विअ संवुत्ता। [यदार्यपुत्र आज्ञापयति। (उपविश्य) आर्यपुत्र! तातो वाऽम्बा वा किन्नु खलु भणिष्यतीत्याविग्नेव संवृत्ता।]

राजा—पद्मावति! एवमेतत्।

किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे
कन्या मयाप्यपहृता न च रक्षिता सा।
भाग्यैश्चलैर्महदवाप्तगुणोपघातः
पुत्रः पितुर्जनितरोष इवास्मि भीतः ॥४॥

किं वक्ष्यति कं सन्देशं कथयिष्यति। इति। मे मम। हृदयं मनः। परिशङ्कितं भयग्रस्तं वर्तत इति शेषः। मया वत्सराजेन। कन्या वासवदत्ता। अपहृता अपनीता। सा। न च रक्षिता न च पालिता। चलैः अस्थिरैः। भाग्यैः प्रारब्धैः। महत्सु गुरुजनेषु अवाप्तः प्राप्तः गुणानां दयादाक्षिण्यादीनाम् अपघातः भङ्गः येन सः। पितुः जनकस्य। जनितः उत्पादितः रोषः क्रोधः येन स तादृशः। पुत्र इव तनय इव। भीतः शङ्कितः। अस्मि ॥४॥

राजा—नहीं। जो स्त्री को देखने का अधिकारी है, उसे स्त्री को देखने से रोकने पर बहुत बुराई होती है। इसलिए बैठ जाओ।

पद्मावती—जो आर्यपुत्र की आज्ञा। (बैठकर) आर्यपुत्र! पिता या माता ने क्या सन्देश भेजा होगा—इस चिन्ता में कुछ उद्विग्न-सी हो रही हूँ।

राजा—पद्मावती! तुमने ठीक कहा है।

मेरा हृदय शंकित है कि वे क्या कहेंगे। मैंने उनकी पुत्री का अपहरण किया किन्तु मैं उसकी रक्षा न कर सका। अस्थिर भाग्यों के चक्कर में आकर मैं गुरुजनों का अपराधी बना। जैसे पिता को क्रोधित कर पुत्र उनसे डरता है, वैसे ही मैं इस समय उनसे डर रहा हूँ ॥४॥

पद्मावती—ण किं सक्कं रक्खिदुं पत्तकाले । [न किं शक्यं रक्षितुं प्राप्तकाले ।]

प्रतीहारी—एसो कंचुईओ धत्ती अ पडिहारं उवट्ठिदा ।[एषः काञ्चुकीयो धात्री च प्रतीहारमुपस्थितौ ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यताम् ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्त्ताऽऽज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति काञ्चुकीयो धात्री प्रतीहारी च)

काञ्चुकीयः—भोः !

सम्बन्धिराज्यमिदमेत्य महान् प्रहर्षः
स्मृत्वा पुनर्नृपसुतानिधनं विषादः ।
किं नाम दैव ! भवता न कृतं यदि स्याद्
राज्यं परैरपहृतं कुशलं च देव्याः ॥५॥

इदम् । सम्बन्धिनः उदयनसम्बन्धिनः दर्शकनृपस्य । राज्यम् । एत्य प्राप्य । महान् भूयान् । प्रहर्षः प्रमोदः । पुनः भूयः । नृपसुतायाः वासवदत्तायाः ।

पद्मावती—मृत्युकाल आ जाने पर कोई किसी को नहीं बचा सकता ।

प्रतीहारी—कंचुकी और धाय दोनों द्वारपाल के पास खड़े हैं ।

राजा—तो उन्हें शीघ्र ले आओ ।

प्रतीहारी—जो स्वामी की आज्ञा । (चली जाती है ।)

(कंचुकी, धाय और प्रतीहारी का प्रवेश)

कंचुकी—अहा !

सम्बन्धी के राज्य में आकर मुझे महान् हर्ष हो रहा है । राजकुमारी की मृत्यु का स्मरण कर दुख भी होता है । हे भाग्य ! शत्रु से अपहृत राज्य की प्राप्ति के साथ देवी वासवदत्ता के जीवित रहने का शुभ-समाचार—यदि ये दोनों बातें एक साथ हो जातीं तो आपने क्या न किया होता ? ॥५॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा, उपसप्पदु अय्यो । [एष भर्त्ता, उपसर्पत्वार्यः ।]
काञ्चुकीयः—(उपेत्य) जयत्वार्यपुत्रः ।
धात्री—जेदु भट्टा । (जयतु भर्त्ता ।)
राजा—(सबहुमानम्) आर्य !

पृथिव्यां राजवंश्यानामुदयास्तमयप्रभुः ।
अपि राजा स कुशली मया काङ्क्षितबान्धवः ॥६॥

काञ्चुकीयः—अथ किम् ? कुशली महासेनः । इहापि सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।

निधनं मरणम् । स्मृत्वा विचिन्त्य । विषादः खेदः । परैः शत्रुभिः । अपहृतम् आयत्तीकृतम् । राज्यं वत्सैकदेशाधिपत्यं पुनरधिगतं भवेत् इति शेषः । देव्याः वासवदत्तायाः । कुशलं क्षेमं च । स्याद् भवेत् । तर्हि दैव विधे । भवता त्वया-किम् । हितम् इष्टम् । न कृतं न सम्पादितम् । स्यात् भवेत् । सर्वमपि कृतं स्यादिति भावः ॥५॥

पृथिव्यां लोके । राजवंश्यानां राजवंशोद्भवानां राज्ञाम् । उदयास्तमय-प्रभुः उदयः उत्कर्षः अस्तमयः विनाशः तयोः प्रभुः समर्थः । मया उदयनेन सह । काङ्क्षितबान्धवः काङ्क्षितं बान्धवं बन्धुत्वं येन सः, यद्वा काङ्क्षितः अभिलषितः चासौ बान्धवः बन्धुश्च । असौ नृपः प्रद्योतः । अपि किम् । कुशली कुशलेन क्षेमेण वर्तते ॥६॥

प्रतीहारी—यह हैं महाराज ! आप इनके पास चलिए।
कंचुकी—(पास पहुँच कर) आर्यपुत्र की जय हो ।
धाय—महाराज की जय हो ।
राजा—(आदर से) आर्य !

पृथिवी पर राजाओं के उत्थान तथा पतन करने में समर्थ, मेरे साथ सम्बन्ध बनाने को इच्छुक राजा महासेन सकुशल तो हैं ? ॥६॥

राजा—(आसनादुत्थाय) किमाज्ञापयति महासेनः ?

काञ्चुकीयः—सदृशमेतद् वैदेहीपुत्रस्य । नन्वासनस्थेनैव भवता श्रोतव्यो महासेनस्य सन्देशः ।

राजा—यदाज्ञापयति महासेनः । (उपविशति)

काञ्चुकीयः—दिष्ट्या परैरपहृतं राज्यं पुनः प्रत्यानीतमिति ।

कुतः—

कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते ।
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते ॥७॥

राजा—आर्य ! सर्वमेतन्महासेनस्य प्रभावः । कुतः—

ये पुरुषाः । कातराः भीरवः । अपि वा । अशक्ताः असमर्थाः सन्ति । तेषु । उत्साहः उद्यमः । न जायते नोत्पद्यते । हि नूनम् । प्रायेण बहुशः । नरेन्द्रश्रीः राज्यलक्ष्मीः । सोत्साहैः उत्साहसम्पन्नैः । एव । पुरुषैः । भुज्यते सेव्यते ॥७॥

पूर्वं पुरा । अहम् । अवजितः निगृहीतः । पुनः भूयः । सुतैः पुत्रैः । सह

कंचुकी—हाँ । महासेन सकुशल हैं । यहाँ भी सबका कुशल पूछते हैं ।

राजा—(आसन से उठकर) महासेन का क्या आदेश है ?

कंचुकी—यह (आसन से उठकर सन्देश सुनना) वैदही-पुत्र के सदृश ही शिष्टाचार है । महासेन के सन्देश को आप आसन पर बैठे ही सुनें ।

राजा—महासेन की जो आज्ञा । (बैठ जाता है) ।

कंचुकी—"आपने शत्रु द्वारा अपहृत राज्य सौभाग्य से पाया ।" क्योंकि—

जो कायर और असमर्थ होते हैं, उनमें उत्साह नहीं होता । प्रायः उत्साही वीर ही राज्यलक्ष्मी का उपभोग करते हैं ॥७॥

राजा—यह सब महासेन का ही प्रभाव है । क्योंकि

अहमवजितः पूर्वं तावत्सुतैः सह लालितो
दृढमपहृता कन्या भूयो मया न च रक्षिता ।
निधनमपि च श्रुत्वा तस्यास्तथैव मयि स्वता
ननु यदुचितान् वत्सान् प्राप्तुं नृपोऽत्र हि कारणम् ॥८॥

काञ्चुकीयः—एष महासेनस्य सन्देशः । देव्याः सन्देशमिहात्रभवती कथयिष्यति ।

राजा—हा अम्ब ।

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता ।
मम प्रवासदुःखार्त्ता माता कुशलिनी ननु ? ॥९॥

साकम् । लालितः पालितः । मया । कन्या प्रद्योतपुत्री वासवदत्ता । अपहृता अपनीता । भूयः पुनश्च । न रक्षिता न पालिता । तस्याः वासवदत्तायाः । निधनं मरणम् । अपि । श्रुत्वा आकर्ण्य । तथैव पूर्ववदेव । मयि मद्विषये । स्वता आत्मीयता । ननु । उचितान् युक्ताधिकारविषयान् । वत्सान् वत्स-देशान् । प्राप्तुम् अधिगन्तुम् । नृपः प्रद्योतः । हि एव । कारणं निमित्तम् ॥८॥

षोडशान्तःपुरज्येष्ठा षोडशानाम् अन्तःपुराणां राजदाराणां मध्ये ज्येष्ठा प्रधाना । पुण्या पवित्राचरणा । नगरदेवता सर्वजनमाननीयेत्यर्थः । मम मे । माता जननी अङ्गारवती । प्रवासदुःखार्ता प्रवासः देशान्तरगमनं तस्य दुःखेन पीडया आर्ता पीडिता । कुशलिनी कुशलयुक्ता । ननु किम् ? ॥९॥

पहले उन्होंने मुझे जीता । अपने पुत्रों के साथ मुझे पाला । उनकी कन्या को मैं साहस से भगा लाया । फिर उसे बचा नहीं सका । उसकी मृत्यु भी सुनकर उनका मुझपर वही प्रेम बना हुआ है । निश्चित ही अपने उचित वत्स राज्य को पाने में महाराज महासेन ही कारण हैं ॥८॥

कंचुकी—यह महासेन का सन्देश है । महारानी का सन्देश आर्या वसुन्धरा सुनाएँगी ।

राजा—हाय माता !

सोलह रानियों में प्रमुख, नगर की प्रमुख देवता, मेरे प्रवास के दुख में पीड़ित माता अंगारवती ठीक तो हैं ? ॥९॥

धात्री—अरोआ भट्टिणी भट्टारं सव्वगदं कुसलं पुच्छदि
[अरोगा भट्टिनी भर्त्तारं सर्वगतं कुशलं पृच्छति ।]

राजा—सर्वगतं कुशलमिति ? अम्ब ! ईदृशं कुशलम् ।

धात्री—मा दाणिं भट्टा अदिमत्तं संतप्पिदुं । [मेदानीं भर्त्तातिमात्रं सन्तप्तुम् ।]

काञ्चुकीयः—धारयत्वार्यपुत्रः ! उपरताऽप्यनुपरता महासेनपुत्री एवमनुकम्प्यमानाऽऽर्यपुत्रेण । अथवा—

कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ?
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रुह्यते च ॥१०॥

मृत्युकाले मरणावसरे । कः जनः । कं जनम् । रक्षितुं त्रातुम् । शक्तः समर्थः ? न कोऽपीत्यर्थः । रज्जोः गुणस्य । छेदे भंगे सति । घटं कुम्भं जलपात्रं वा । के जनाः । धारयन्ति । न केऽपीत्यर्थः । एवम् अनेन प्रकारेण । लोकः जनः । वनानां वृक्षाणाम् तुल्यधर्मा तुल्यः समानः धर्मः यस्य सः तादृशः । काले काले समये समये । छिद्यते छिन्नो भवति । रुह्यते उत्पद्यते च ॥१०॥

धाय—महारानी सकुशल हैं । आपका सपरिवार कुशल-मंगल पूछती हैं ।

राजा—सपरिवार कुशल-मंगल ? माता ! यहाँ तो मेरी ऐसी दशा है ।

धाय—महाराज ! अब आप अधिक शोक न करें ।

कंचुकी—आप धीरज रखें । महासेन की पुत्री मृत होने पर भी मृत नहीं जबकि आप उसके प्रति इतनी सहानुभूति रखते हैं । अथवा—

मृत्यु का समय उपस्थित हो जाने पर कौन किसे बचा सकता है ? जब रस्सी टूट जाती है, कौन घड़े को गिरने से रोक सकता है ? इसी तरह मनुष्य भी वृक्षों के ही समान है—समय-समय पर मरता है और समय-समय पर जन्म लेता है ॥१०॥

राजा—आर्य ! मा मैवम्,

महासेनस्य दुहिता शिष्या देवी च मे प्रिया ।
कथं सा न मया शक्या स्मर्तुं देहान्तरेष्वपि ॥११॥

धात्री—आह भट्टिणी—उवरदा वासवदत्ता । मम वा महासेणस्स वा जादिसा गोवालअपालआ, तादिसो एव्व तुमं पुढमं एव्व अभिप्पेदो जामादुअत्ति । एदण्णिमित्तं उज्जइणिं आणीदो । अणग्गिसक्खिअं वीणाववदेसेण दिण्णा । अत्तणो चवलदाए अणिव्वुत्तविवाहमंगलो एव्व गदो । अह अ अम्हेहिं तव अ वासवदत्ताए अ पडिकिदिं चित्तफलआए आलिहिअ विवाहो णिव्वुत्तो। एसा चित्तफलआ तव सआसं पेसिदा । एदं पेक्खिअ णिव्वुदो होहि । [आह भट्टिनी—उपरता वासवदत्ता । मम वा महासेनस्य वा यादृशौ गोपालकपालकौ तादृश एव त्वं प्रथममेवाभिप्रेतो जामातेति । एतन्निमित्तमुज्जयिनीमानीतः । अनग्निसाक्षिकं वीणाव्यपदेशेन दत्ता । आत्मनश्चपलतयाऽनिर्वृत्तविवाहमंगल एव

महासेनस्य प्रद्योतस्य । दुहिता पुत्री । मे मम । प्रिया अभिमता । शिष्या वीणादिकलासु शिक्षणीया प्रिया च आसीत् । सा वासवदत्ता । देहान्तरेषु जन्मान्तरेषु अपि । कथं केन प्रकारेण । मया उदयनेन । स्मर्तुं चिन्तयितुम् । न शक्या न पार्या ॥११॥

राजा—आर्य ! ऐसा न कहो ।

वह महासेन की पुत्री मेरी शिष्या थी, मेरी प्रिय पत्नी थी । जन्म-जन्मान्तर में भी मैं उसे कैसे भूल सकता हूँ ॥११॥

धात्री—महारानी ने कहा है—"वासवदत्ता मर गई । तुम मेरे या महाराज के लिए गोपाल तथा पालक जैसे प्रिय पुत्र हो । हमने पहले ही तुझे दामाद मान लिया था । इसीलिए तुम उज्जयिनी में लाये गये थे । अग्नि को साक्षी न बनाकर वीणा सिखाने के बहाने उसे तुझे समर्पण किया था । किन्तु अपनी चञ्चलता के कारण, विवाह किए बिना ही तुम भाग गये । तब हम

गतः। अथ चावाभ्यां तव च वासवदत्तायाश्च प्रतिकृतिं चित्रफलकायामालिख्य विवाहो निर्वृत्तः। एषा चित्रफलका तव सकाशं प्रेषिता। एतां दृष्ट्वा निर्वृतो भव।

राजा—अहो ! अतिस्निग्धमनुरूपं चाभिहितं तत्रभवत्या।

वाक्यमेतत् प्रियतरं राज्यलाभशतादपि।
अपराद्धेष्वपि स्नेहो यदस्मासु न विस्मृतः ॥१२॥

पद्मावती—अय्यउत्त ! चित्तगदं गुरुअणं पेक्खिअ अभिवादेदुं इच्छामि। [आर्यपुत्र ! चित्रगतं गुरुजनं दृष्ट्वाभिवादयितुमिच्छामि।]

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ। [चित्रफलकां दर्शयति।] [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका।]

पद्मावती—(दृष्ट्वाऽऽत्मगतम्)हं, अदिसदिसी खु इअं अय्याए आवन्तिआए। (प्रकाशम्) अय्यउत्त ! सदिसी खु इअं अय्याए ? (दृष्ट्वाऽऽत्मगतम्) हम् ! अति-

---

एतद् इदम्। वाक्यं वचः। राज्यलाभशताद् अभि बहुराज्यप्राप्तेरपि। प्रियतरं सविशेषं प्रियम्। अस्तीति शेषः। यत् यतः अपराद्धेष्वपि कृतापराधेष्वपि। अस्मासु मयि। स्नेहः वात्सल्यम्। न विस्मृतः न विस्मृतिं नीतः ॥१२॥

दोनों ने तुम्हारे और वासवदत्ता के चित्र को फलक पर उतारकर तुम दोनों का विवाह कर दिया। वह चित्र-फलक तुम्हारे पास भेजा है। इसे देखकर तुम धीरज धरो।

राजा—अहो ! महारानी ने अतिप्रिय तथा अपने अनुरूप ही कहा है।

यह वाक्य सैकड़ों राज्यों के लाभ से भी प्रियतर है; क्योंकि वे मेरे अपराधी होने पर भी अपना प्रेम नहीं भूले हैं ॥१२॥

पद्मावती—आर्यपुत्र ! चित्र में गुरुजन (वासवदत्ता) को देखकर मैं प्रणाम करना चाहती हूँ।

धात्री—देखिए, राजकुमारी जी, देखिए। (चित्रपट दिखाती है।)

पद्मावती—(देखकर मन में) यह तो आवन्तिका के बहुत सदृश है।

सदृशी खल्वियमार्याया आवन्तिकायाः । (प्रकाशम्) आर्यपुत्र ! सदृशी खल्वियमार्यायाः ?

राजा—न सदृशी । सैवेति मन्ये । भोः कष्टम् ।

अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य विपत्तिर्दारुणा कथम् ।
इदं च मुखमाधुर्यं कथं दूषितमग्निना ॥१३॥

पद्मावती—अय्यउत्तस्स पडिकिदिं पेक्खिअ जाणामि इअ अय्याए सदिसी ण वेत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृतिं दृष्ट्वा जानामीयमार्यायाः सदृशी न वेति ।]

धात्री—पेक्खदु पेक्खदु भट्टिदारिआ । [पश्यतु पश्यतु भर्तृदारिका ।]

पद्मावती—(दृष्ट्वा) अय्यउत्तस्स पडिकिदीए सदिसदाए जाणामि इअं अय्याए सदिसीत्ति । [आर्यपुत्रस्य प्रतिकृत्याः सदृशतया जानामीयमार्यायाः सदृशीति ।]

अस्य स्निग्धस्य प्रियस्य । वर्णस्य रूपस्य । दारुणा भीषणा । विपत्तिर्विनाशः । कथं केन प्रकारेण । अभूत् । इदम् अलौकिकम् । मुखमाधुर्यम् आननसौन्दर्यम् । अग्निना । वह्निना । कथं केन प्रकारेण । दूषितं विध्वंसितम् ॥१३॥

(प्रकट)—आर्यपुत्र ! क्या यह आर्या के सदृश है ?

राजा—सदृश ही नहीं, मैं समझता हूँ कि यह वही है । हाय !

इस सुन्दर रूप पर ऐसी दारुण विपत्ति कैसे आ पड़ी ? मुख की इस सुन्दरता को अग्नि ने कैसे दूषित किया ? ॥१३॥

पद्मावती—आर्यपुत्र के चित्र को देखकर ही मैं जानूँगी कि यह दूसरा चित्र आर्या (वासवदत्ता) के सदृश है या नहीं ।

धाय—राजकुमारी जी, देखिए ।

पद्मावती—(देखकर) आर्यपुत्र के चित्र की आर्यपुत्र की आकृति से समानता को देखकर मैं समझती हूँ कि यह दूसरा चित्र आर्या (वासवदत्ता) की आकृति के समान ही होगा ।

राजा—देवि ! चित्रदर्शनात् प्रभृति प्रहृष्टोद्विग्नामिव त्वां पश्यामि। किमिदम् ?

पद्मावती—अय्यउत्त ! इमाए पडिकिदीए सदिसी इह एव्व पडिवसदि। [आर्यपुत्र ! अस्याः प्रतिकृत्याः सदृशीहैव प्रतिवसति।]

राजा—किं वासवदत्तायाः ?

पद्मावती—आम। [आम्]

राजा—तेन हि शीघ्रमानीयताम्।

पद्मावती—अय्यउत्त! मम कण्णाभावे केणावि बम्हणेण मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो। पोसिदभत्तुओ परपुरुसदंसणं परिहरदि। ता अय्यं मए सह आअदं पेक्खिअ जाणादु अय्यउत्तो। [आर्यपुत्र ! मम कन्याभावे केनापि ब्राह्मणेन मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः। प्रोषितभर्तृका परपुरुषदर्शनं परिहरति। तदार्यां मया सहागतां दृष्ट्वा जानात्वार्यपुत्रः।]

राजा—देवी ! चित्र-दर्शन से मैं तुझे प्रसन्न और उद्विग्न-सा देख रहा हूँ। यह क्या है ?

पद्मावती—आर्यपुत्र ! इस चित्र के सदृश एक नारी यहीं पर रहती है।

राजा—क्या वासवदत्ता के सदृश ?

पद्मावती—हाँ।

राजा—तो उसे शीघ्र ले आओ।

पद्मावती—आर्यपुत्र ! जब मैं कन्या थी, किसी ब्राह्मण ने 'यह मेरी बहन है'—ऐसा कह कर मेरे पास उसे धरोहर के रूप में रखा था। उसका पति परदेश में चला गया है, अतः वह किसी अन्य पुरुष का मुँह नहीं देखती। तो मेरे साथ आने पर उसे आर्या (धाय) देखें और तब आर्यपुत्र जानेंगे (कि वह वासवदत्ता है कि नहीं)।

राजा—

यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तमन्या भविष्यति ।
परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता ॥१४॥

(प्रविश्य)

प्रतीहारी—जेदु भट्टा । एसो उज्जइणीओ बम्हणो, भट्टिणीए हत्थे मम भइणिअत्ति ण्णासो णिक्खित्तो तं पडिग्गहिदुं पडिहारं उवट्ठिदो । [जयतु भर्त्ता । एष उज्जयिनीयो ब्राह्मणः, भट्टिन्या हस्ते मम भगिनिकेति न्यासो निक्षिप्तः, तं प्रतिग्रहीतुं प्रतीहारमुपस्थितः ।]

राजा—पद्मावति ! किन्नु स ब्राह्मणः ?

पद्मावती—होदव्वं । [भवितव्यम् ।]

राजा—शीघ्रं प्रवेश्यतामभ्यन्तरसमुदाचारेण स ब्राह्मणः ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । [यद् भर्ताऽऽज्ञापयति ।]

(निष्क्रान्ता)

यदि चेत् । विप्रस्य ब्राह्मणस्य । भगिनी स्वसा । (तर्हि) व्यक्तं स्पष्टम् । अन्या इतरा । भविष्यति । लोके जगति । परस्परगता पारस्परिकी । रूपतुल्यता वर्णसदृशता । दृश्यते अवलोक्यते, विद्यते इत्यर्थः ॥१४॥

राजा—यदि वह ब्राह्मण की बहन है तो वह अवश्य ही अन्य होगी । संसार में एक-दूसरे के रूप की समानता दीख पड़ती है ॥१४॥

(आकर)

प्रतीहारी—महाराज की जय हो ! "स्वामिनी के पास मैंने अपनी बहन को धरोहर के रूप में रखा था, उसे लेने आया हूँ ।" ऐसा कहकर उज्जैन का यह ब्राह्मण द्वारपाल के पास खड़ा है ।

राजा—पद्मावती ! क्या वही ब्राह्मण है ?

पद्मावती—सम्भव है ।

राजा—उचित सम्मान के साथ उस ब्राह्मण को शीघ्र ही भीतर लाओ ।

प्रतीहारी—जो महाराज का आदेश । (चली जाती है ।)

राजा—पद्मावति ! त्वमपि तामानय ।

पद्मावती—जं अय्यउत्तो आणवेदि । [यदार्यपुत्र आज्ञापयति ।

(निष्क्रान्ता)

(ततः प्रविशति यौगन्धरायणः प्रतीहारी च)

यौगन्धरायणः—(आत्मगतम्) भोः !

प्रच्छाद्य राजमहिषीं नृपतेर्हितार्थं
कामं मया कृतमिदं हितमित्यवेक्ष्य ।
सिद्धेऽपि नाम मम कर्मणि पार्थिवोऽसौ
किं वक्ष्यतीति हृदयं परिशङ्कितं मे ॥१५॥

प्रतीहारी—एसो भट्टा । उपसप्पदु अय्यो । [एष भर्त्ता । उपसर्पत्वार्यः] ।

नृपतेः राज्ञः । हितार्थं लाभाय । राजमहिषीं राज्ञः उदयनस्य महिषीं पत्नीं वासवदत्ताम् । प्रच्छाद्य संगोप्य । मया यौगन्धरायणेन । कामं स्वैरम् । हितं लाभम् । अपहृतराज्यप्राप्तिरूपम् । अवेक्ष्य अवधार्य । इदं वासवदत्ता-गोपनम् । कृतं विहितम् । मम । कर्मणि गोपनकार्ये । सिद्धेऽपि प्राप्तफलेऽपि । असौ । पार्थिवः राजा उदयनः । किं वक्ष्यति किम् अभिधास्यति । इति एवम् । मे मम । हृदयं मनः । परिशङ्कितं शङ्काकुलम् । वर्तते इति शेषः ॥१५॥

राजा—पद्मावती ! तुम भी उसे लाओ ।

पद्मावती—आर्यपुत्र की जो आज्ञा । (चली जाती है ।)

(यौगन्धरायण और प्रतीहारी का प्रवेश)

यौगन्धरायण—(मन में) ओह !

राजा के हित के लिए महारानी वासवदत्ता को छिपाकर 'इसी में उनका हित होगा' यह समझकर मैंने यह सही काम किया । मेरे सभी कार्य सिद्ध हो जाने पर भी वह राजा क्या कहेंगे—इस प्रकार मेरा मन व्याकुल हो रहा है ॥१५॥

प्रतीहारी—ये महाराज हैं, उनके पास चलें ।

यौगन्धरायणः—(उपसृत्य) जयतु भवान् जयतु ।

राजा—श्रुतपूर्व इव स्वरः । भो ब्राह्मण ! किं भवतः स्वसा पद्मावत्या हस्ते न्यास इति निक्षिप्ता ?

यौगन्धरायणः—अथ किम् ?

राजा—तेन हि त्वर्यतां त्वर्यतामस्य भगिनिका ।

प्रतीहारी—जं भट्टा आणवेदि । (निष्क्रान्ता) [यद्भर्त्ताज्ञापयति]

(ततः प्रविशति पद्मावती आवन्तिका प्रतीहारी च)

पद्मावती—एदु एदु अय्या । पिअं दे णिवेदेमि । [एत्वेत्वार्या । प्रियं ते निवेदयामि ।]

आवन्तिका—किं किं । [किं किम् ?]

पद्मावती—भादा दे आअदो । [भ्राता ते आगतः ।]

आवन्तिका—दिट्ठिआ दाणिं पि सुमरदि । [दिष्ट्येदानीमपि स्मरति ।]

यौगन्धरायण—(पास जाकर) जय हो, महाराज की जय हो ।

राजा—यह स्वर तो पहले सुना हुआ-सा मालूम पड़ता है । ऐ ब्राह्मण! क्या आपने बहन को पद्मावती के पास धरोहर के रूप में रखा था ?

यौगन्धरायण—हाँ !

राजा—तो इनकी बहन को शीघ्र ही यहाँ लाओ ।

प्रतीहारी—महाराज का जो आदेश । (चली जाती है ।)

(पद्मावती, आवन्तिका और प्रतीहारी का प्रवेश)

पद्मावती—आओ आओ आर्या ! इधर आओ । मैं तुझे प्रिय समाचार सुनाती हूँ ।

आवन्तिका—क्या, क्या ?

पद्मावती—तुम्हारा भाई आया है ।

आवन्तिका—सौभाग्य से मुझे वह अब भी भूला नहीं ।

पद्मावती—(उपसृत्य) जेदु अय्यउत्तो । एसो ण्णासो । [जयत्वार्यपुत्रः । एष न्यासः ।]

राजा—निर्यातय पद्मावति ! साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः । इहात्रभवान् रैभ्यः, अत्रभवती चाधिकरणं भविष्यतः ।

पद्मावती—अय्य ! णीअदां दारिणं अय्या । [आर्य ! नीयतामिदानीमार्या ।

धात्री—(आवन्तिकां निर्वर्ण्य) अम्मो ! भट्टिदारिआ वासवदत्ता ! [अम्मो ! भर्तृदारिका वासवदत्ता !]

राजा—कथं महासेनपुत्री ? देवि प्रविश त्वमभ्यन्तरं पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—न खलु न खलु प्रवेष्टव्यम् । मम भगिनी खल्वेषा ।

राजा—किं भवानाह ? महासेनपुत्री खल्वेषा ।

यौगन्धरायणः—भो राजन् !

पद्मावती—(पास पहुँचकर) आर्यपुत्र की जय हो ! यह है धरोहर ।

राजा—पद्मावती ! धरोहर को चुकता करो । साक्षियों के सामने धरोहर लौटानी चाहिए । इसमें श्रीमान् रैभ्य और आर्या वसुन्धरा न्यायसभिक होंगे ।

पद्मावती—आर्य ! अब आर्या को ले जाइए ।

धाय—(आवन्तिका को देखकर) अहो ! यह तो राजकुमारी वासवदत्ता है ।

राजा—क्या महासेन की पुत्री ? देवी ! तुम पद्मावती के साथ भीतर (रनवास में) जाओ ।

यौगन्धरायण—भीतर मत भेजिए, भीतर मत भेजिए । यह तो मेरी बहन है ।

राजा—आप क्या कह रहे हैं ? यह तो महासेन की पुत्री है ।

भरतानां कुले जातो विनीतो ज्ञानवाञ्छुचिः ।
तन्नार्हसि बलाद्धर्त्तुं राजधर्मस्य देशिकः ॥१६॥

राजा—भवतु, पश्यामस्तावद् रूपसादृश्यम् । संक्षिप्यतां जवनिका ।

यौगन्धरायणः—जयतु स्वामी ।

वासवदत्ता—जेदु अय्यउत्तो । [जयत्वार्यपुत्रः ।]

राजा—अये ! असौ यौगन्धरायणः । इयं महासेनपुत्री ।

किन्नु सत्यमिदं स्वप्नः सा भूयो दृश्यते मया ।
अनयाऽप्येवमेवाहं दृष्टया वञ्चितस्तदा ॥१७॥

भरतानां भरतवंशजानाम् । कुले वंशे । जातः उत्पन्नः । विनीतः विनयोपेतः । ज्ञानवान् विवेकशीलः । शुचिः शुद्धाचारः । राजधर्मस्य राजोचितकर्तव्यस्य । देशिकः प्रवर्तकः । [त्वं ममैतां भगिनीम्] बलात् हठात् । हर्तुं ग्रहीतुम् । न अर्हसि न योग्योऽसि ॥१६॥

किन्नु । इदं पूर्वोक्तं दृश्यम् । सत्यम् असत्यं वा । सा पूर्वं समुद्रगृहे दृष्टा । भूयः पुनः अस्मिन् समये । दृश्यते विलोक्यते । अनया वासवदत्तया । दृष्टया विलोकितया । अपि । तदा तस्मिन् काले । समुद्रगृहे इति शेषः । अहम् । एवमेव । वञ्चितः विप्रलब्धः ॥१७॥

यौगन्धरायण—राजन् ! भरत-वंश में आपका जन्म हुआ है । आप विनयशील हैं, ज्ञानवान् हैं और शुद्धात्मा हैं । राजधर्म के प्रवर्त्तक होकर आपको मेरी बहन का बलपूर्वक अपहरण सुहाता नहीं है ॥१६॥

राजा—अच्छा, हम आकृति की सदृशता देखते हैं । घूँघट उठाइये ।

यौगन्धरायण—महाराज की जय हो !

वासवदत्ता—आर्यपुत्र की जय हो !

राजा—ओह ! यह है यौगन्धरायण ! और यह है महासेन की पुत्री (वासवदत्ता) !

क्या यह सत्य है अथवा स्वप्न है जो मैं फिर से देख रहा हूँ । पहले भी मैं इसी प्रकार इसे देखकर इससे ठगा गया था ॥१७॥

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्यपनयेन कृतापराधः खल्वहम् । तत् क्षन्तुमर्हति स्वामी । (इति पादयोः पतति)

राजा—(उत्थाप्य) यौगन्धरायणो भवान् ननु ।

मिथ्योन्मादैश्च युद्धैश्च शास्त्रदृष्टैश्च मन्त्रितैः ।
भवद्यत्नैः खलु वयं मज्जमानाः समुद्धृताः ॥१८॥

यौगन्धरायणः—स्वामिभाग्यानामनुगन्तारो वयम् ।

पद्मावती—अम्महे ! अय्या खु इअं । अय्ये ! सहीजणसमुदाआरेण अजाणंतीए अदिक्कंदो समुदाआरो । ता सीसेण पसादेमि । [अहो ! आर्या खल्वियम् । आर्ये ! सखीजनसमुदाचारेणाऽजानन्त्याऽतिक्रान्तः समुदाचारः । तच्छीर्षेण प्रसादयामि ।]

मिथ्योन्मादैः अवास्तविकैः चित्तविभ्रमचेष्टितैः । युद्धैः संग्रामैः । शास्त्रदृष्टैः शास्त्रमन्त्रितैः । (ईदृशैः) भवद्यत्नैः भवदुद्योगैः । खलु नूनम् । मज्जमानाः अधो गच्छन्तः । वयम् । समुद्धृताः उन्नमिताः । विपदः बहिर्निष्कासिता इत्यर्थः ॥१८॥

यौगन्धरायण—स्वामिन् ! महारानी को छिपाकर मैंने अपराध किया है । महाराज क्षमा करें । (पाँवों पर गिरता है ।)

राजा—(उठकर) आप सत्य ही यौगन्धरायण हो ।

पागलपन के झूठे बहाने, युद्ध, शास्त्रोक्त मन्त्रणा एवं आपके द्वारा किए गए उपायों से निश्चित ही डूबते हुए हम बचाए गए ॥१८॥

यौगन्धरायण—स्वामी के भाग्यों के साथ ही हमारा भाग्य भी जुड़ा है ।

पद्मावती—अहो ! यह आर्या वासवदत्ता हैं ! आर्ये ! अज्ञानवश मैंने आपके साथ सखी-जैसा व्यवहार करके शिष्टाचार का उल्लंघन किया है । इसलिए मैं प्रणाम द्वारा आपकी प्रसन्नता चाहती हूँ ।

वासवदत्ता—(पद्मावतीमुत्थाप्य) उट्ठेहि उट्ठेहि। अविहवे ! उट्ठेहि। अत्थिसअ णाम सरीरं अवरद्धइ। (उत्तिष्ठोत्तिष्ठाविधवे ! उत्तिष्ठ, अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति।]

पद्मावती—अणुग्गहिदम्हि। [अनुगृहीताऽस्मि]

राजा—वयस्य यौगन्धरायण ! देव्यपनये का कृता ते बुद्धिः ?

यौगन्धरायणः—कौशाम्बीमात्रं परिपालयामीति।

राजा—अथ पद्मावत्या हस्ते किं न्यासकारणम् ?

यौगन्धरायणः—पुष्पकभद्रादिभिरादेशिकैरादिष्टा स्वामिनो देवी भविष्यतीति।

राजा—इदमपि रुमण्वता ज्ञातम् ?

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! सर्वैरेव ज्ञातम्।

राजा—अहो ! शठः खलु रुमण्वान्।

यौगन्धरायणः—स्वामिन् ! देव्याः कुशलनिवेदनार्थमद्यैव प्रतिनिवर्त्ततामत्रभवान् रैभ्योऽत्रभवती च।

वासवदत्ता—(पद्मावती को उठाकर) उठो, उठो, सौभाग्यवती ! उठो। प्रार्थी (यौगन्धरायण) का यह धरोहर-रूपी शरीर ही अपराधी है।

पद्मावती—आपकी महती कृपा।

राजा—मित्र यौगन्धरायण ! देवी के छिपाने का क्या प्रयोजन था ?

यौगन्धरायण—(यही कि) केवल कौशाम्बी पर ही हमारा अधिकार रह गया था (राज्य का अन्य भाग शत्रु के हाथ में चला गया था) इसलिए।

राजा—पद्मावती के हाथ में इन्हें धरोहर रूप में रखने का क्या कारण ?

यौगन्धरायण—पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों का कथन था कि पद्मावती आपकी रानी होंगी।

राजा—क्या यह रुमण्वान् को मालूम था ?

यौगन्धरायण—महाराज ! सभी जानते थे।

राजा—अहो ! रुमण्वान् बड़ा धूर्त्त है।

यौगन्धरायण—महाराज ! देवी वासवदत्ता का कुशल वृत्तान्त कहने के लिए आज ही आर्य रैभ्य और आर्या वसुन्धरा को वापस भेज दीजिए।

राजा—न, न । सर्व एव वयं यास्यामो देव्या पद्मावत्या सह ।

यौगन्धरायणः—यदाज्ञापयति स्वामी ।

(भरतवाक्यम्)

इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ॥१९॥

(निष्क्रान्ताः सर्वे)

षष्ठोऽङ्कः समाप्तः

स्वप्नवासवदत्तं समाप्तम् ।

———

सागरपर्यन्ताम् सागराः समुद्राः पर्यन्ताः मर्यादा यस्याः ताम् । हिमवान् हिमालयो विन्ध्यः विन्ध्याचलश्च तौ कुण्डले कर्णाभरणे यस्याः ताम् । एकम् आतपत्रं छत्रम् अङ्कः चिह्नं यस्याः ताम् । इमाम् । महीं पृथ्वीम् । नः अस्माकम् । राजसिंहः नृपतिवरः । प्रशास्तु पालयतु ॥१९॥

राजा—नहीं, नहीं । हम सभी देवी पद्मावती को साथ लेकर वहाँ जायेंगे ।

यौगन्धरायण—जैसा महाराज का आदेश ।

(भरतवाक्य)

अद्वितीय राजछत्र से चिह्नित, समुद्र-पर्यन्त इस पृथिवी का, जिसके हिमालय और विन्ध्याचल दो कुण्डल हैं, हमारे राजसिंह नरेश पालन करें ॥१९॥

(सब चले जाते हैं ।)

छठा अङ्क समाप्त

स्वप्नवासवदत्त समाप्त

———

परिशिष्ट

'स्वप्नवासवदत्त' के परीक्षोपयोगी अंशों की प्रसंगसहित व्याख्या

प्रथम अंक

(१) एवमनिर्ज्ञातानि दैवतान्यप्यवधूयन्ते ।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है । यह यौगन्धरायण की उक्ति है ।

महाराज दर्शक की बहन पद्मावती अपनी माता महादेवी से मिलने के लिए तपोवन के आश्रम को चली । सिपाहियों ने तपोवन के मार्ग से लोगों को हटाना शुरू किया । वासवदत्ता को यह अच्छा नहीं लगा । उसने मन्त्री यौगन्धरायण से पूछा कि कौन मनुष्य लोगों को हटा रहा है ? वासवदत्ता के प्रश्न के उत्तर में यौगन्धरायण ने कहा कि जो मनुष्य मार्ग से लोगों को हटा रहा है, वह अपने को धर्म से हटा रहा है । उसके कथन का अभिप्राय यह था कि तपोवन में मार्ग से लोगों को हटाना पाप है ।

इस पर वासवदत्ता ने कहा कि मेरे पूछने का अभिप्राय यह नहीं है । मैं तो यह पूछना चाहती हूँ कि क्या मुझे भी हटाया जाएगा ? उत्तर में यौगन्धरायण ने कहा कि हाँ, आपको भी हटाया जायगा; क्योंकि हटाने वाले लोग नहीं जानते कि आप महासेन प्रद्योत की पुत्री तथा वत्सराज उदयन की पत्नी हैं । अज्ञानवश तो देवताओं का भी अपमान हो जाता है ।

(२) तथा परिश्रमः परिखेदं नोत्पादयति यथाऽयं परिभवः ।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है । यह वासवदत्ता की उक्ति है ।

मगध नरेश दर्शक की बहन पद्मावती अपनी माता महादेवी से मिलने

के लिए तपोवन के आश्रम को चली। उसके सिपाहियों ने मार्ग से लोगों को हटाना शुरू किया। वासवदत्ता को यह अच्छा नहीं लगा।

यौगन्धरायण और वासवदत्ता दोनों गुप्त वेष में वहाँ आये थे। दोनों ने मार्ग में अनेक कष्टों का अनुभव किया होगा। वासवदत्ता बहुत थक गई थी, किन्तु थकावट की उसे चिन्ता नहीं हुई। वह इस विचार से दुःखित थी कि उसे भी मार्ग से हटाया जायगा। उक्त वाक्य में वह यौगन्धरायण से कह रही है कि श्रम से उसे ऐसा कष्ट नहीं हुआ जैसा कि अपमान से होने वाला है।

(३) **कालक्रमेण जगतः परिवर्त्तमाना**
चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः।

यह वाक्य भासकृत स्वप्नवासवदत्त के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह यौगन्धरायण की उक्ति है।

तपोवन में पद्मावती के आने पर मार्ग से लोगों को हटाया जा रहा है। वासवदत्ता चिन्तित है कि उसे भी मार्ग से हटाया जायगा। शारीरिक परिश्रम से उत्पन्न कष्ट की अपेक्षा अपमान से उत्पन्न कष्ट अधिक भीषण होता है। इस पर यौगन्धरायण उसे इस प्रकार धीरज बँधाता है—

एक समय था जब तुम भी इसी प्रकार चलती थी। जब पुनः तुम्हारे पति को राज्य-लाभ होगा तब तुम इसी प्रकार चलोगी। भाग्य सदा एक-सा नहीं रहता। कभी अच्छे दिन आते हैं और कभी बुरे। रथ का पहिया जब घूमता रहता है तब उसका जो भाग नीचे है, वह ऊपर आ जाता है और फिर वही ऊपर का भाग नीचे चला जाता है। वैसे ही मनुष्य का भाग्य कभी उन्नत और कभी अवनत हो जाता है।

(४) **न परुषमाश्रमवासिषु प्रयोज्यम्।**

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह काञ्चुकीय की उक्ति है।

मगध नरेश दर्शक की बहन पद्मावती जब अपनी माता महादेवी से

मिलने के लिए तपोवन में आई और उसके सिपाही मार्ग में से लोगों को हटाने लगे तब काञ्चुकीय ने आकर सम्भषक से कहा कि लोगों को मत हटाओ। आश्रमवासियों के साथ कठोरता का व्यवहार करना उचित नहीं। इससे राजा की निन्दा होती है। ये तपोवन के लोग नगर में होने वाले अपमानों से बचने के हेतु वन में आकर बसे हैं। इनके साथ नागरिकों का-सा व्यवहार करना उचित नहीं है।

काञ्चुकीय के कहने पर सिपाही मार्ग से लोगों को हटाना बन्द कर देते हैं।

(५) हन्त सविज्ञानमस्य दर्शनम्।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है।

यह यौगन्धरायण की उक्ति है। मगध-नरेश दर्शक की बहन पद्मावती अपनी माता महादेवी से मिलने के लिए तपोवन में आई। उसके सिपाही मार्ग से लोगों को हटाने लगे। तब काञ्चुकीय ने आकर उन सिपाहियों को रोका और कहा कि यह तपोवन है। यहाँ रहने वाले लोगों को यदि तुम मार्ग से हटाओगे तो राजा की निन्दा होगी। अपमान से बचने के लिए तो ये लोग यहाँ आकर बसे हैं।

उक्त वाक्य में यौगन्धरायण ने काञ्चुकीय की प्रशंसा की है। वह उसके विचार से सहमत है।

(६) प्रद्वेषो बहुमानो वा सङ्कल्पादुपजायते।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह यौगन्धरायण की उक्ति है।

महाराज दर्शक की बहन पद्मावती को देखकर यौगन्धरायण के मन में उसके प्रति विशेष आदर उत्पन्न हुआ। पुष्पकभद्र आदि ज्योतिषियों से उसे ज्ञात हुआ था कि पद्मावती उदयन की पत्नी होगी। वह पद्मावती को

स्वामिनी समझने लगा। विवाह-सम्बन्ध के होने से पूर्व ही उसके प्रति उसका आदर जाग्रत हो उठा। वह सोचने लगा कि द्वेष और आदर अपने मन की विचार-शक्ति से ही उत्पन्न होते हैं, क्योंकि मैं इसे अपने राजा उदयन की पत्नी के रूप में देख रहा हूँ अतः मेरा इसके प्रति आदर-भाव उत्पन्न हुआ है।

(७) **तपोवनानि नामातिथिजनस्य स्वगेहम्।**

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' नाटक के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह तापसी की उक्ति है।

महाराज दर्शक की बहन पद्मावती अपनी माता महादेवी के दर्शनार्थ तपोवन को आई। स्वागतकारिणी तापसी को उसने प्रणाम किया—'आर्ये वन्दे !' तापसी ने उसे आशीर्वाद दिया—'चिरं जीव' और कहा कि तपोवन अतिथियों का अपना घर है। इस पर पद्मावती ने अपना आगमन सफ समझा।

(८) **दुःखं न्यासस्य रक्षणम्।**

वह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' नाटक के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह काञ्चुकीय की उक्ति है।

महाराज दर्शक की बहन पद्मावती ने सभी तापसों को आमन्त्रित किया। वह उन्हें उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करने को तैयार हो गई। काञ्चुकीय ने घोषणा की—"कलश किसे चाहिए ? कौन वस्त्र का इच्छुक है ? किसे अपना शिक्षण पूर्ण करके गुरु को कितनी दक्षिणा देनी है ?"

इस घोषणा को सुनकर यौगन्धरायण काञ्चुकीय के समक्ष आकर अपनी माँग प्रस्तुत करता है—"मेरी बहन आवन्तिका कुछ दिनों के लिए पद्मावती का आश्रय चाहती है। उसका पति विदेश में गया है। जब तक वह लौटता नहीं, तक तक मेरी बहन पद्मावती के पास रहेगी।"

यौगन्धरायण की माँग सुनकर काञ्चुकीय घबरा जाता है। वह उसकी माँग को स्वीकार करना नहीं चाहता। वह कहता है कि 'धरोहर की रक्षा

करना कठिन है। इसकी अपेक्षा तो धन देना, प्राण देना और तप करना भी कठिन नहीं है।'

किन्तु पद्मावती काञ्चुकीय के इस विचार से सहमत नहीं हुई। जबकि पहले ही घोषणा कर दी गई कि जो व्यक्ति जिस वस्तु की माँग करे, वह उसे दी जाएगी, तब किसी भी प्रार्थना को ठुकराना उचित नहीं होगा।

(९) नहि सिद्धवाक्यान्युत्क्रम्य गच्छति विधिः सुपरीक्षितानि।

यह वाक्य भासकृत स्वप्नवासवदत्त के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह यौगन्धरायण की उक्ति है।

जब यौगन्धरायण तपोवन में आया तब पद्मावती भी अकस्मात् वहाँ आ पहुँची। पद्मावती ने आकर घोषणा करा दी कि कोई भी तापस किसी भी इष्ट वस्तु को माँगे, वह उसे देगी। पद्मावती का तपोवन में आना और उक्त प्रकार की घोषणा कराना—दोनों ऐसे सुअवसर पर हुए, जैसे कि वे योजना के अन्तर्गत हों। इस प्रकार मन्त्रियों की योजना को सफल बनाने में दैव ने भी साथ दिया। आदेशिकों ने कई बातें पहले से ही कह दी थीं। उन्होंने पहले ही कह दिया था कि उदयन के राज्य का बहुत-सा भाग शत्रु के हाथ में चला जाएगा। उन्होंने यह भी कहा था कि उदयन का पद्मावती से विवाह होगा। पहली बात पूरी उतरी। शत्रु ने वत्सदेश का बहुत-सा भाग छीन लिया। अब दूसरी बात भी—उदयन का पद्मावती से विवाह—पूरी उतरनी चाहिए।

यौगन्धरायण का कथन है कि दैव सिद्धों के आदेशानुसार चलता है। सिद्धों का वचन कभी असत्य नहीं होता। उनके वचन में विश्वास रखते हुए यौगन्धरायण ने वासवदत्ता को पद्मावती के हाथ सौंपा।

(१०) सर्वजनसाधारणमाश्रमपदं नाम।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है।

यह काञ्चुकीय की उक्ति है।

पद्मावती, आवन्तिका के वेष में वासवदत्ता, परिव्राजक के वेष में यौगन्धरायण, और काञ्चुकीय तपोवन में एक साथ बैठे हुए बातचीत कर रहे थे। इतने में वहाँ एक ब्रह्मचारी आया। महिलाओं को देखकर वह कुछ व्याकुल हो गया। इस पर काञ्चुकीय ने उससे कहा कि आप व्याकुल न हों। तपोवन के आश्रम में कोई भी व्यक्ति आ सकता है। यह स्थान सभी के लिए प्रवेश्य है।

(११) सकाम इदानीमार्ययौगन्धरायणो भवतु।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के प्रथम अङ्क से उद्धृत किया गया है। वासवदत्ता आत्मगत कह रही है।

ब्रह्मचारी उदयन की शोकावस्था के सम्बन्ध में इस प्रकार सुना रहा था कि जब उदयन को मालूम हुआ कि वासवदत्ता और यौगन्धरायण दोनों अग्नि में जल गये तब वह उसी अग्नि में कूदने लगा, किन्तु मन्त्रियों ने उसे रोका। तब वह वासवदत्ता के गहनों को छाती से लगाकर मूर्छित हो गया।

ब्रह्मचारी द्वारा वर्णित उदयन की शोक-दशा को सुनकर सभी उपस्थित जन दुःखित हुए, किन्तु वासवदत्ता अपने मन में आर्य यौगन्धरायण को कोसने लगी। मूर्छा-दशा में यदि उदयन ने प्राण त्याग दिये तो यौगन्धरायण की पूरी योजना विफल हो जाएगी—यह सोचकर वासवदत्ता ने मन में व्यंग्यपूर्ण शब्दों में कहा कि अब आर्य यौगन्धरायण का मनोरथ पूरा हो।

(१२) धन्या सा स्त्री यां तथा वेत्ति भर्त्ता
भर्त्तुः स्नेहात् सा हि दग्धाऽप्यदग्धा।

यह अवतरण भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के प्रथम अङ्क से लिया गया है। यह ब्रह्मचारी की उक्ति है।

उदयन को जब वासवदत्ता की मृत्यु का पता चला, तब वह पृथ्वी पर लोटने लगा। उसका शरीर धूलि से भर गया। वह सहसा उठकर—'हा वासवदत्ता! हा अवन्तिराजकुमारी! हा प्रियशिष्या' आदि बहुत विलाप करने लगा। उसे इतना दुख हुआ जितना कभी किसी चकवे को भी प्रिया-

वियोग में नहीं होता। कोई भी विरही इतना सन्तप्त नहीं होगा। धन्य है वह नारी, जिसे पति वैसा मानता है। वास्तव में वही पतिप्रिया है। जलने पर भी वह नहीं जली। वह उसके हृदय में रहकर सदैव जीवित है।

द्वितीय अङ्क

(१३) सर्वजनमनोऽभिरामं खलु सौभाग्यं नाम।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के द्वितीय अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह पद्मावती की उक्ति है।

वासवदत्ता, पद्मावती और उसकी दासी एक साथ बैठी बातचीत कर रही थीं। वासवदत्ता को मालूम था कि पद्मावती का सम्बन्ध उसके भाई से होने वाला है। इसलिए वासवदत्ता ने उसे 'भविष्यन्महासेनवधु' कहा। इसपर पद्मावती ने पूछा कि यह महासेन कौन है? वासवदत्ता ने कहा कि उज्जयिनी के राजा प्रद्योत का यह नाम है। बहुत सेना होने के कारण उसका यह नाम पड़ा है। तब दासी ने कहा कि पद्मावती महासेन के पुत्र से विवाह करना नहीं चाहती अपितु वत्सराज उदयन को चाहती है। तब वासवदत्ता ने पूछा —क्यों? दासी ने कहा इसलिए कि वह दयालु है। फिर दासी ने पूछा कि यदि वह राजा रूपवान् न हो। पद्मावती के उत्तर से पहले ही वासवदत्ता ने कहा कि वह रूपवान् है—इस प्रकार उज्जयिनी के लोग कहते हैं। वासवदत्ता की इस उक्ति पर पद्मावती को लेशमात्र भी संदेह नहीं हुआ। वह समझती थी कि उज्जयिनी के लोगों ने उसे कई बार देखा होगा और उसकी प्रशंसा की होगी; क्योंकि सुन्दरता सबके मन को लुभाती है।

(१४) आगमप्रधानानि सुलभपर्यवस्थानानि महापुरुषहृदयानि भवन्ति।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के द्वितीय अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह धाय की उक्ति है।

वासवदत्ता, पद्मावती और उसकी दासी एक साथ बैठी हुई विनोद-वार्त्ता में व्यस्त थीं। इतने में पद्मावती की धाय ने आकर कहा कि राज-

कुमारी पद्मावती का वत्सराज उदयन के प्रति वाग्दान हो गया। इस पर वासवदत्ता ने पूछा कि उदयन स्वस्थ तो हैं? उत्तर में धाय ने कहा कि स्वस्थ हैं और उन्होंने राजकुमारी पद्मावती को स्वीकार भी कर लिया है। तब वासवदत्ता ने सहसा कहा कि बहुत बुरा हुआ। जब धाय ने पूछा कि इसमें क्या बुरा हुआ, तब वासवदत्ता ने कहा कि इसमें बुरा कुछ नहीं हुआ, किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि वासवदत्ता के लिए इतना सन्तप्त होकर अब एकदम उदासीन हो गए। तब धाय ने उसे समझाया कि महान् व्यक्तियों के हृदय शास्त्रों के उपदेशों से प्रभावित होकर सहज ही अपनी प्रकृति पर आ जाते हैं। अतः वासवदत्ता की मृत्यु का शोक उनके मन में स्थायी नहीं रहा। शास्त्रों में लिखा है कि मृत्यु अनिवार्य है। मृतक के लिए शोक नहीं करना चाहिए। महापुरुषों की यह विशेषता है कि वे गम्भीर होते हैं। शोक उन्हें दबा नहीं सकता।

तृतीय अंक

(१५) अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के तृतीय अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह वासवदत्ता की उक्ति है।

उदयन का पद्मावती से विवाह हो गया। इससे पूर्व उदयन के हृदय पर वासवदत्ता का ही अधिकार था। अब वे पद्मावती के हो गये; अतः वासवदत्ता अतीव चिन्तित है। शिलापट्ट पर बैठी हुई शून्य-हृदय-सी वह दुःखित हो रही है।

इतने में एक दासी ने आकर उससे कहा कि हमारी स्वामिनी कह रही हैं कि तुम राजकुमारी पद्मावती के लिए सौभाग्य-माला तैयार करो। वासवदत्ता पहले से ही दुःखित थी। इस सन्देश से वह और भी दुःखित हुई और कहने लगी कि ऐसा काम करना भी मेरे भाग्य में लिखा था! हाय, दैव निश्चित ही निर्दय है।

यह वाक्य 'स्वप्नवासवदत्त' के पञ्चम अङ्क में भी आया है। वहाँ भी यह वासवदत्ता की उक्ति है। पद्मावती की दासी वासवदत्ता से कह रही है कि राजकुमारी पद्मावती शिरोवेदना से पीड़ित हैं। उनके मस्तक पर लगाने को वह अनुलेपन लाई है।

वासवदत्ता सुनकर घबरा जाती है। उसे पता है कि उदयन पद्मावती को ब्याहकर वासवदत्ता के शोक को कथंचित् रोक सके हैं। अब पद्मावती को अस्वस्थ सुनकर वे पूर्ववत् दुःखी होंगे। उक्त शब्दों में वह दैव को कोस रही है। दैव अतीव निर्दय है।

यहाँ पर पति-प्रेम का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया गया है। पद्मावती के अस्वस्थ होने पर वासवदत्ता इसलिए दुःखित है कि उदयन पद्मावती को अस्वस्थ देखकर स्वयं अस्वस्थ हो जायेंगे।

(१६) अयुक्तं परपुरुषसङ्कीर्त्तनं श्रोतुम्।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के तृतीय अंक से उद्धृत किया गया है। यह वासवदत्ता की उक्ति है। वासवदत्ता और उसकी दासी एक साथ बैठी हुई विनोद-वार्त्तालाप कर रही हैं।

पद्मावती का उदयन के साथ विवाह हो गया। वासवदत्ता दासी से पूछती है—क्या तूने वर को देखा है? दासी 'हाँ' में उत्तर देती हैं। वासवदत्ता पूछती है कि क्या वह रूपवान् है? तब दासी कहती है कि हाँ, वह कामदेव के सदृश है। वासवदत्ता दासी से चुप रहने को कहती है। दासी पूछती है कि तुम मुझे मना क्यों कर रही हो? वासवदत्ता कहती है कि पराये पुरुष का वर्णन सुनना ठीक नहीं है।

चतुर्थ अङ्क

(१७) दत्तं वेतनमस्य परिखेदस्य।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के चतुर्थ अंक से उद्धृत किया गया है। यह वासवदत्ता की उक्ति है।

जब उदयन और विदूषक परस्पर वार्त्ता कर रहे हैं तब विदूषक उदयन से पूछता है कि आपको कौन प्रिय है—वासवदत्ता अथवा पद्मावती ? उदयन कुछ नहीं कहना चाहता। विदूषक आग्रह करता है—वासवदत्ता जीवित नहीं हैं; पद्मावती वहाँ उपस्थित नहीं। अतः विदूषक के प्रश्नोत्तर में उदयन को त्रस्त होना नहीं चाहिए। तब उदयन अपने हृदय के भाव को व्यक्त करता है—

"रूप, शील और माधुर्य होने के कारण यद्यपि पद्मावती आदरणीय है तो भी वासवदत्ता में आसक्त मेरे मन को वह आकृष्ट नहीं कर सकी।"—उदयन की इस उक्ति से प्रफुल्ल होकर वासन्ती लता मंडप में छिपी हुई वासवदत्ता अपने मन में कहती है कि अज्ञातवास में मैंने जितना भी कष्ट उठाया, आज उसका वेतन मिल गया; क्योंकि उदयन समझते हैं कि मैं मर चुकी हूँ तो भी वे मुझे भूले नहीं और पद्मावती की अपेक्षा मुझे विशेष गौरव प्रदान किया। अज्ञातवास में मेरा रहना आज सफल हुआ; क्योंकि मुझे पति का प्रेम परोक्ष में प्रकट हुआ।

(१८) अनतिक्रमणीयो हि विधिः।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के चतुर्थ अंक में से उद्धृत किया गया है। यह विदूषक की उक्ति है।

विदूषक के कथन का अभिप्राय यह है कि विधि-विधान अवश्य होकर रहेगा। हम उसे हटा नहीं सकते।

यह प्रसंग उस समय का है जब उदयन विदूषक से पूछ रहा है कि 'तुझे कौन प्रिय है—वासवदत्ता अथवा पद्मावती ?' विदूषक कहता है कि वासवदत्ता का मैं अवश्य आदर किया करता था, किन्तु पद्मावती रूपवती है, मधुरवाक् है, क्रोध और अहंकार नहीं करती। उसमें एक भव्य गुण यह है कि वह उत्तम स्वादिष्ट भोजन से मेरा अभिनन्दन करती है। इसपर उदयन कहता है कि यह मैं वासवदत्ता से कह दूँगा। विदूषक कहता है कि वासवदत्ता कहाँ है ! वह तो मर चुकी हैं। तब उदयन शोक से व्याकुल हो जाता है। इसपर विदूषक उसे धैर्य बँधाता है और कहता है कि दैवगति दुर्निवार है। दैवी

विधान अतिक्रान्त नहीं हो सकता। जो भाग्य में लिखा है, वह होकर रहेगा। मनुष्य के अधीन कुछ भी नहीं है।

(१६) दुःखं त्यक्तुं बद्धमूलोऽनुरागः
स्मृत्वा स्मृत्वा याति दुःखं नवत्वम्।
यात्रा त्वेषा यद् विमुच्येह बाष्पं
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम्॥

यह पद्य भासकृत स्वप्नवासवदत्त के चतुर्थ अंक से उद्धृत किया गया है। यह उदयन की उक्ति है।

वासवदत्ता की याद में उदयन शोकातुर है। विदूषक उसे धैर्य बँधा रहा है। उदयन उससे कहता है कि मुझे धैर्य का उपदेश मत दो, तुम मेरी दशा को नहीं जानते।

दृढ़ प्रेम को भुलाना सरल नहीं है। प्रियजन की याद में दुख नया हो जाता है। प्रेम की यह रीति है कि हम वियोग में आँसू बहाकर उऋण हो जाते हैं और हमारा दुःखी मन शान्त हो जाता है।

(२०) **सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति।**

यह वाक्य 'स्वप्नवासवदत्त' के चौथे अंक से उद्धृत किया गया है। यह पद्मावती की उक्ति है।

प्रमदवन की वाटिका में वासवदत्ता की स्मृति में उदयन अश्रुपात कर रहे हैं। उनका मुख आँसुओं के गिरने से मलिन हो गया है। विदूषक मुँह धोने का जल लाने जाता है। जब वह जल ला रहा है, मार्ग में पद्मावती से भेंट हो जाती है। वह विदूषक से पूछती है कि यह क्या है? पहले तो विदूषक बतलाना नहीं चाहता, किन्तु जब पद्मावती आग्रह करती है तब वह कहता है कि हवा में उड़ी हुई कास के फूल की धूलि राजा की आँख में पड़ गई है और उनका मुख अश्रुपात से मलिन हो गया है। अतः उनके लिए मुँह धोने का जल ले जा रहा हूँ। अच्छा होगा कि यह जल आप ही ले जावें।

वासन्तीलता-मण्डप में छिपी हुई पद्मावती ने जान लिया था कि वास्तव में वासवदत्ता की स्मृति में आँख से निकले हुए आँसुओं से उदयन का मुख मलिन हुआ है, न कि कास के फूल की धूलि के आँख में पड़ने से। वह समझती है कि विदूषक उससे झूठ बोल रहा है। वह उससे कैसे कहता कि वासवदत्ता की स्मृति में उदयन रोया है। वह स्वयं मन में कहती है कि शिष्ट जन का सेवक भी शिष्ट होता है। शिष्टाचार के अनुसार रहस्य का गोपन ही उचित था।

(२१) स्त्रीस्वभावस्तु कातरः।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के चतुर्थ अंक से उद्धृत किया गया है। यह उदयन की उक्ति है।

प्रमदवन की वाटिका में वासवदत्ता की स्मृति में उदयन अश्रुपात कर रहे हैं। उनका मुख आँसुओं के गिरने से मलिन हो गया है। विदूषक मुँह धोने का जल लाने जाता है। जब वह जल ला रहा है, मार्ग में पद्मावती से भेंट हो जाती है। वह विदूषक से पूछती है कि यह क्या है? पहले तो विदूषक मौन रहता है, किन्तु जब पद्मावती आग्रह करती है तब वह कहता है कि वायु से उड़ी हुई कास-पुष्प की रेणु राजा के नेत्र में पड़ गई है। मुँह धोने का जल ला रहा हूँ। अच्छा होगा कि यह जल आप ही ले चलें।

माधवीलता-मंडप में छिपी हुई पद्मावती ने जान लिया था कि वास्तव में वासवदत्ता की स्मृति में आँख से स्रवित अश्रु से उदयन का मुख मलिन हुआ था, न कि कास-कुसुम की रेणु के आँख में पड़ जाने से।

किन्तु जब वह जल लेकर पहुँचा तब उदयन ने उससे झूठ कह दिया कि वायु से प्रकम्पित कास-कुसुम की रेणु के आँख में पड़ जाने से मेरे मुँह पर आँसू आ गिरे।

इस प्रकार उदयन तथ्य को छिपाना चाहता है। वह मन में सोच रहा है कि यदि इसे सत्य कह दिया जाय तब सम्भव है कि यह उस सत्य को सहन न कर सके। यद्यपि यह गंभीर स्वभाव की नारी है तो भी स्त्रियों का स्वभाव अधीर होता है।

(२२) सत्कारो हि नाम सत्कारेण प्रतीष्टः प्रीतिमुत्पादयति ।

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के चतुर्थ अंक से उद्धृत किया गया है। यह विदूषक की उक्ति है।

विदूषक उदयन से कह रहा है कि महाराज दर्शक ने अपने मित्र राजाओं की एक बैठक बुलाई है। हमें चाहिए कि हम स्वयं महाराज दर्शक को साथ लेकर वहाँ चलें। महाराज दर्शक ने बैठक बुलाकर हमें सम्मानित किया है। हमें महाराज दर्शक के साथ स्वयं वहाँ उपस्थित होकर दर्शक को सम्मान देना चाहिए। हमें आमंत्रण की प्रतीक्षा करना उचित नहीं। जब कोई व्यक्ति हमें आदर देता है तो हमें भी उसका आदर करना चाहिए। प्रेम से प्रेम बढ़ता है।

(२३) गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः ।
कर्त्तारः सुलभा लोके विज्ञातारश्च दुर्लभाः ॥

यह पद्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के चतुर्थ अंक से उद्धृत किया गया है। यह महाराज उदयन की उक्ति है। उदयन विदूषक से कह रहे हैं कि परोपकार आदि विशाल गुणों का तथा निरन्तर सम्मान का प्रदर्शन करने वाले लोग जगत् में बहुत पाये जाते हैं, किन्तु उनके जानकार विरले ही मिलते हैं।

प्रसंग इस प्रकार है—उदयन का विवाह पद्मावती से हो गया है। अनन्तर वत्सराज के भूभाग को, जिसे आरुणि ने छीन लिया था, लौटाने के लिए महाराज दर्शक ने मित्र-राष्ट्रों के राजाओं की एक बैठक बुलाई है। विदूषक उदयन से कह रहा है कि हम आमंत्रण की प्रतीक्षा में न रहें अपितु स्वयं महाराज दर्शक को साथ लेकर बैठक में उपस्थित हो जायँ। महाराज दर्शक ने सभा का आयोजन करके हमें सम्मान दिया है। हम उस सम्मान को पहचानें और बैठक में उपस्थित होकर इस बात का परिचय दें कि हमने उनके सम्मान का स्वागत किया है।

विदूषक ने इस पद्य से पूर्व उदयन से कहा था कि जब कोई व्यक्ति हमें

आदर देता है तब हमें भी उसका आदर करना चाहिए। प्रस्तुत पद्य में उदयन द्वारा विदूषक के कथन का समर्थन है।

षष्ठ अङ्क

(२४) **कातरा येऽप्यशक्ता वा नोत्साहस्तेषु जायते।**
प्रायेण हि नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते॥

यह पद्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के छठे अंक से उद्धृत किया गया है। यह काञ्चुकीय की उक्ति है। काञ्चुकीय उदयन को महासेन प्रद्योत का सन्देश दे रहा है। अतः वास्तव में महासेन प्रद्योत की यह उक्ति है।

महासेन के सन्देश का तात्पर्य यह है कि निर्बल और कायर मनुष्यों में उत्साह नहीं होता। राज्य का उपभोग प्रायः उत्साही मनुष्य ही करते हैं।

प्रसंग इस प्रकार है—राजा दर्शक की सहायता और मंत्रियों की नीति के फलस्वरूप उदयन ने शत्रु पर विजय पाई। महासेन प्रद्योत सन्देश भेजकर उदयन की प्रशंसा कर रहे हैं। उनके सन्देश का तत्त्व कौटिल्य के इस कथन पर आधारित है कि पृथ्वी का उपभोग वीर पुरुष ही कर सकता है—'वीरभोग्या वसुन्धरा।'

(२५) **कः कं शक्तो रक्षितुं मृत्युकाले**
रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति।
एवं लोकस्तुल्यधर्मो वनानां
काले काले छिद्यते रुह्यते च॥

यह पद्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' नाटक के छठे अंक से उद्धृत किया गया है। यह काञ्चुकीय की उक्ति है।

महासेन प्रद्योत ने काञ्चुकीय और धाय को वासवदत्ता और उदयन के चित्र देकर उदयन के पास भेजा। वे आकर उदयन से मिले और उसे महासेन प्रद्योत और अंगारवती का सन्देश दिया। चित्र को देखकर उदयन का सन्ताप पुनर्जागृत हो गया। उसे वासवदत्ता की याद आई। तब काञ्चुकीय ने उससे कहा कि आप सन्ताप मत करें क्योंकि मृत्यु अनिवार्य है।

जब मौत का समय निकट आता है तब कोई भी व्यक्ति उसे नहीं बचा सकता। जब घड़े की रस्सी टूट जाती है तब घड़ा कुएँ में गिर जाता है। हम उसे पकड़ नहीं सकते। मनुष्य उस वन के समान है, जो प्रतिदिन कटता है और फिर से उगता है।

(२६) परस्परगता लोके दृश्यते रूपतुल्यता।

यह पंक्ति भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के छठे अंक से उद्धृत की गई है। यह उदयन की उक्ति है।

प्रद्योत महासेन ने वासवदत्ता और उदयन के चित्र देकर काञ्चुकीय और धाय को उदयन के पास भेजा। जब पद्मावती ने वासवदत्ता के चित्र को देखा तब उसने कहा कि उस चित्र की आकृति आवन्तिका से मिलती है, जिसे एक ब्राह्मण ने उसके हाथ सौंपा था और कहा था कि जबतक उसका पति विदेश से नहीं लौटता तब तक वह पद्मावती के पास रहेगी।

इसपर उदयन ने कहा कि यदि आवन्तिका किसी ब्राह्मण की बहन है, तो स्पष्ट ही वासवदत्ता नहीं होगी। जगत् में समान रूप और समान आकृति के व्यक्ति भी मिलते हैं।

(२७) साक्षिमन्न्यासो निर्यातयितव्यः।

यह वाक्य भासकृत स्वप्नवासवदत्त के छठे अंक से उद्धृत किया गया है। यह उदयन की उक्ति है।

जब पद्मावती, उदयन, काञ्चुकीय और धाय बातचीत कर रहे थे तब पद्मावती ने कहा कि वासवदत्ता का जो चित्र महासेन ने भेजा है, उस चित्र की आकृति के सदृश आकृति की एक नारी उसके पास रहती है। एक ब्राह्मण ने उसे सौंपा था कि जबतक उसका पति विदेश से नहीं लौटता तबतक वह पद्मावती के पास रहेगी।

पद्मावती की इस बात को सुनकर उदयन को सन्देह हुआ कि सम्भव है, वह वासवदत्ता हो।

इतने में ब्राह्मण के वेष में यौगन्धरायण उनके समक्ष उपस्थित हुआ।

उसने अपनी बहन लौटाने की माँग की। आवन्तिका को वहाँ लाया गया। वह घूँघट किये थी।

उदयन ने पद्मावती से कहा कि घरोहर को लौटाते समय कोई गवाह होना चाहिए। आवन्तिका को लौटाते समय कांचुकीय और धाय—दोनों गवाह होंगे।

(२८) **अर्थिस्वं नाम शरीरमपराध्यति।**

यह वाक्य भासकृत 'स्वप्नवासवदत्त' के छठे अङ्क से उद्धृत किया गया है। यह वासवदत्ता की उक्ति है।

पद्मावती ने वासवदत्ता से क्षमा माँगी और कहा कि मैंने आपकी वास्तविकता को न जानकर भूल की। मैंने आपके साथ सखी-जैसा व्यवहार किया जबकि मुझे गुरुजन के सदृश व्यवहार करना था। अतः मैं नमन द्वारा आपको मनाती हूँ।

ऐसा कहते हुए जब पद्मावती ने अपना सिर झुकाया तब वासवदत्ता ने पद्मावती से कहा कि आप अपराधिनी नहीं हैं। अपराध मेरा ही था; क्योंकि मैंने अपने को अज्ञात रखा। इस परिस्थिति में आपने यदि मेरे साथ कभी अनुचित व्यवहार किया तो इसमें मेरा ही अपराध है। "प्रार्थी यौगन्धरायण द्वारा आपको सौंपा गया मेरा शरीर ही अपराधी है।"

अथवा उक्त वाक्य प्रश्नात्मक है। वासवदत्ता पद्मावती से कह रही है कि मेरे शरीर की स्वामिनी होकर क्या आप अपराधिनी हो सकती हैं? अर्थात् नहीं हो सकतीं। प्रभु का दास पर पूर्ण अधिकार होता है।

———

टिप्पणियाँ

प्रथम अंक

नान्दी—भास के नाटकों में नान्दी का अर्थ 'पूर्वरंग' है। नाटक के आरंभ से पूर्व, पर्दे के पीछे विघ्न-निवारणार्थ देवताओं की अर्चा की जाती थी।

नन्दन्ति देवता यस्मात्तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥

कालिदास और उसके परवर्त्ती नाटकों में नाटक के आरम्भ में नमस्कारात्मक अथवा शुभाशंसात्मक पद्य को ही 'नान्दी' कहा जाने लगा।

प्रस्तुत नाटक में 'उदयनवेन्दुसवर्णा०' यह पद्य नान्दी नहीं है; क्योंकि इस पद्य के पूर्व, भास ने नान्दी का होना कहा है—'नान्द्यते ततः प्रविशति सूत्रधारः'। किन्तु भास के परवर्त्ती साहित्यिकों ने इसे नान्दी कहा है क्योंकि उनके द्वारा स्वीकृत नान्दी के सभी लक्षण इसमें मिलते हैं। यह पद्य 'आशीर्वादात्मिका नान्दी' कहा जा सकता है।

सूत्रधार—रंगमञ्च का प्रबन्धक। लक्षण इस प्रकार है—

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।
सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते ॥

(१) **उदयेति**। अन्वयः—उदयनवेन्दुसवर्णौ आसवदत्ताबलौ पद्मावतीर्णपूर्णौ वसन्तकस्रौ बलस्य भुजौ त्वां पाताम् ॥

शब्दार्थ—सवर्ण=सदृश। आसव=मदिरा। अवतीर्ण=आगमन। कम्र=कमनीय, रम्य। पाताम्=रक्षा करें।

समास—उदयनवेन्दुसवर्णौ—(उदयकालिकः नवेन्दुः नवः इन्दुः—कर्मधारय)=उदयनवेन्दुः (कर्म०—मध्यमपदलोपी); उदयनवेन्दुना समानः वर्णः ययोः (बहुव्रीहिः) तौ। आसवदत्ताबलौ—आसवेन दत्तम् अबलं याभ्यां (बहु०) तौ; अथवा—आसवेन दत्तम् आ (समन्तात्) बलं याभ्याम् (बहु०), तौ। पद्मावतीर्णपूर्णौ=पद्मायाः अवतीर्णम् (=अवतारः) (ष० तत्पु०), अथवा

पद्मस्य अवतीर्णम् (ष० तत्पु०), तेन पूर्णौ (तृ० तत्पु०)। वसन्तकश्रौ—वसन्त इव कश्रौ (उपमित कर्म०)।

विशेष—आर्या वृत्तम्।

इस पद्य में उदयन, वासवदत्ता, पद्मावती और वसन्तक—इन चार मुख्य पात्रों का नामनिर्देश किया गया है। अतः यह मुद्रा अलंकार है। [१]

आर्यमिश्र। मिश्र=पूज्य।

नेपथ्य—पर्दे के पीछे नाट्य के उपकरण रखने का स्थान; सज्जाकक्ष।

(२) **भृत्यैरिति। अन्वयः**—मगधराजस्य स्निग्धैः कन्यानुगामिभिः भृत्यैः तपोवनगतः सर्वः जनः धृष्टम् उत्सार्यते।

शब्दार्थ—स्निग्ध=प्रिय। धृष्टम्=कठोरता से, न कि नम्र भाव से।

वाच्य-परिवर्त्तन—मगधराजस्य स्निग्धाः कन्यानुगामिनः भृत्याः तपोवनगतं सर्वं जनं धृष्टम् उत्सारयन्ति॥

समास—मगधराजस्य=मगधानां राजा मगधराजः, (ष० तत्पु०) तस्य।

कन्यानुगामिभिः—कन्याम् अनुगन्तुं शीलम् एषाम् इति तैः, कन्याम् अनुगच्छन्तीति (उपपद तत्पु०) ते कन्यानुगामिनः तैः। तपोवनगतः=तपोवनं गतः (द्वि० तत्पु०)।

विशेष—'मगधराज' शब्द से पद्मावती के भाई तथा मगध देश के राजा दर्शक का निर्देश है। अनुष्टुप् वृत्तम्। [२]

स्थापना—परवर्त्ती साहित्यिकों ने इसे प्रस्तावना कहा है। इसे 'आमुख' भी कहते हैं। कथावस्तु की स्थापना होने से ही इस अंश को 'स्थापना' कहा गया है। भास के नाटकों में सूत्रधार के द्वारा स्थापना की गई है, किन्तु भरत के नाट्यशास्त्र में सूत्रधार से भिन्न ही स्थापक के होने का विधान मिलता है—'स्थापकः प्रविशेत्तत्र'। भास ने सामान्यतः भरत के नियमों का का ही परिपालन किया है, किन्तु कहीं-कहीं स्वतंत्रता का भी परिचय दिया है।

(३) **धीरस्येति। अन्वयः**—धीरस्य आश्रमसंश्रितस्य वसतः वन्यैः फलैः तुष्टस्य मानार्हस्य वल्कलवतः जनस्य त्रासः समुत्पाद्यते। भोः विनयाद् अपेतपुरुषः चलैः भाग्यैः विस्मितः कः अयम् उत्सिक्तः इदं निभृतं तपोवनम् आज्ञया ग्रामीकरोति।

शब्दार्थ—वसतः=तपोवन में निवास करते हुए । वन्य=वन में उत्पन्न । वल्कलवतः=वल्कलधारी । त्रास=भय । उत्सिक्त=घमंडी । अपेत=रहित । विस्मित=अतिगर्वित । निभृत=शान्त । ग्रामीकरोति—गाँव-जैसा बना रहा है ।

समास—आश्रमसंश्रितस्य=आश्रमं संश्रितः (द्वि० तत्पु०) तस्य । अपेत-पुरुषः अपेताः पुरुषाः यस्य (बहु०) सः ।

विशेष—शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

ग्रामीकरोति=अग्रामं ग्रामं करोति । च्विप्रत्ययः । [३]

वक्तुकामा—वक्तुं कामो यस्याः सा (बहु०) । 'काम' शब्द से पूर्व 'तुं' के मकार का लोप हो जाता है—'तुं काममनसोरपि' ।

भुक्तोज्झितः—(पूर्वं) भुक्तः (पश्चाद्) उज्झितः (कर्म०) ।

(४) **पूर्वमिति । अन्वयः**—पूर्वं त्वया अपि एवम् अभिमतं गतम् आसीत् । पुनः भर्तुः विजयेन श्लाघ्यं गमिष्यसि । कालक्रमेण परिवर्त्तमाना गतः भाग्यपङ्क्तिः चक्रारपङ्क्तिः इव गच्छति ॥

शब्दार्थ—अभिमत—स्वेच्छानुरूप । श्लाघ्यम्—प्रशंसापूर्वक । परिवर्त्तमाना=बदलती हुई । चक्रारपङ्क्तिः=चक्र के पहियों की श्रेणी ।

समास—कालक्रमेण=कालस्य क्रमः (ष० तत्पु०), तेन । चक्रारपङ्क्तिः=चक्रस्य अराणां पंक्तिः (ष० तत्पु०) । भाग्यपङ्क्तिः—भाग्यस्य पङ्क्तिः (ष० तत्पु०) ।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम् । [४]

(५) **परिहरतु इति । अन्वयः**—भवान् नृपापवादं परिहरतु । आश्रम-वासिषु परुषं न प्रयोज्यम् । मनस्विनः एते नगरपरिभवान् विमोक्तुं वनम् अभिगम्य वसन्ति ।

शब्दार्थ—अपवाद=निन्दा । परुष=कठोर । परिभव=अपमान । मन-स्विनः—स्वात्माभिमानी ।

समास—नृपापवादम्=नृपस्य अपवादः (ष० तत्पु०) तम् । आश्रम-वासिषु=आश्रमे वसन्तीति (उपपद तत्पु०) ते आश्रमवासिनः, तेषु । नगर-परिभवान्—नगरोत्पन्नाः परिभवाः (कर्म०) तान् ।

विशेष—पुष्पिताग्रा वृत्तम्। विमोक्तुम्—वि+मुच्+तुम्। मनस्विनः =प्रशस्तं मनः तेषां ते, मनस्+विन्।

अभिगम्य=अभि+गम्+क्त्वा (=ल्यप्)। [५]

काञ्चुकीय=कञ्चुकी। लक्षण इस प्रकार है—

ये नित्यं सत्त्वसम्पन्नाः कामदोषादिवर्जिताः।
ज्ञानविज्ञानकुशलाः काञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः॥
अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कञ्चुकीत्यभिधीयते॥

काञ्चुकीय अथवा कञ्चुकी को निपुण, कामादि दोष-रहित, सत्त्वनिष्ठ, गुणान्वित तथा सभी कार्यों में दक्ष होना चहिए। अन्तःपुर के कार्यों में ही प्रायः उसकी नियुक्ति की जाती है।

अभिहितनामधेयस्य—अभिहितं (कृतं) नामधेयं यस्य (बहु०)।

(६) **तीर्थोदकानीति। अन्वयः**—(तद् भवन्तः) तीर्थोदकानि, समिधः, कुसुमानि, दर्भान्—(इमानि) तपोधनानि स्वैरं वनाद् उपनयन्तु। धर्मप्रिया नृपसुता तपस्विषु धर्मपीडां नहि इच्छेत् एतत् अस्याः कुलव्रतम्।

शब्दार्थ—स्वैरम्=स्वेच्छानुसार, स्वच्छन्द। कुलव्रतं=कुलपरम्परागत धर्म।

समास—तीर्थोदकानि—तीर्थस्य उदकम्=तीर्थोदकम् (ष० तत्पु०), तानि। तपोधनानि=तपसे धनानि (चतुर्थी तत्पु०)। धर्मप्रिया=धर्मः प्रियः यस्याः (ष० तत्पु०) सा। 'वा प्रियस्य' इस वार्तिक के अनुसार 'प्रियधर्मा' भी हो सकता है। धर्मपीडाम्—धर्मस्य पीडा (ष० तत्पु०) ताम्। कुलव्रतम् —कुलागतं व्रतम् (मध्यमपदलोपी कर्म०)।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम्। [६]

(७) **प्रद्वेष इति। अन्वयः**—प्रद्वेषः बहुमानः वा सङ्कल्पात् उपजायते। भर्तृदाराभिलाषित्वात् मे अस्यां महती स्वता।

शब्दार्थ—प्रद्वेषः=वैर। बहुमानः=आदर। सङ्कल्प=मन की इच्छा। भर्तृ=स्वामी। दार=पत्नी। अभिलाषित्व=इच्छा का होना। स्वता—आत्मीयता।

समास—भर्त्तृदाराभिलाषित्वात् — भर्त्तुः दाराः=भर्त्तृदाराः (ष० तत्पु०); भर्त्तृदारा इत्यभिलाषोऽस्यास्तीति (बहु०) भर्त्तृदाराभिलाषी, तस्य भावः भर्त्तृदाराभिलाषित्वं तस्मात् ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [७]

(८) कस्यार्थ इति । अन्वयः—कस्य कलशेन अर्थः ? कः वासः मृगयते ? कः यथानिश्चितं दीक्षां पारितवान् ? पुनः किम् इच्छति यद् गुरोः देयं भवेत् ? इह धर्माभिरामप्रिया, नृपजा आत्मानुग्रहम् इच्छति । यस्य यत् समीप्सितम् अस्ति तद् वदतु । अद्य कस्य किं दीयताम् ?

शब्दार्थ—वासः=वस्त्र को । मृगयते=चाहता है । पारितवान्=समाप्त किया है । धर्माभिराम=धर्म में रुचि रखने वाले (तापस लोग) । नृपजा=राजकुमारी । समीप्सित=अभीष्ट ।

समास—यथानिश्चितम्—निश्चितमनतिक्रम्य (अव्ययी०) । आत्मानुग्रहम्—आत्मनि अनुग्रहः (स० तत्पु०) तम् । धर्माधिरामप्रिया—धर्मेऽभिरामो येषां (बहु०) ते धर्माभिरामाः, धर्माभिरामाः प्रियाः यस्याः (बहु०) सा । अथवा—धर्मः अभिरामः प्रियश्च यस्याः (बहु०) सा । अथवा—धर्मेण अभिरामा चासौ प्रिया च (कर्म०) ।

विशेष—शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् । भास की सरल शैली का यह उत्तम उदाहरण है । [८]

आगन्तुक=नवागत । प्रोषितभर्तृका—प्रोषिता भर्त्ता यस्याः (बहु०)सा । लक्षणं यथा—नानाकार्यवशाद् यस्या दूरदेशं गतः पतिः । सा मनोभवदुःखार्ता भवेत्प्रोषितभर्तृका ।

(९) कार्यमिति । अन्वयः—अर्थैः कार्यं नैव, भोगैः अपि न, वस्त्रैः न, अहं वृत्तिहेतोः काषायं न प्रपन्नः । धीरा दृष्टधर्मप्रचारा इयं कन्या मे भगिन्याः चारित्रं रक्षितुं शक्ता ।

शब्दार्थ—अर्थ=धन । काषाय=गेरुआ वस्त्र । वृत्ति=आजीविका । प्रपन्न=प्राप्त, स्वीकृत । धीरा=विदुषी । चारित्र=चरित्र ।

समास—दृष्टधर्मप्रचारा=दृष्टः धर्मस्य प्रचारः यस्याः (बहु०) सा ।

विशेष—वैश्वदेवी वृत्तम् । अर्थैः, भोगैः, वस्त्रैः—ये तीनों 'हेतौ तृतीया' के उदाहरण हैं ।

काषायेण=कषायेण रक्तं वस्त्रम्, कषाय+अण् । चारित्रम्=चरित्रमेव चारित्रम्—स्वार्थेऽण् । [९]

निक्षेप्तुकामः—नि+क्षिप्+तुम्+काम । 'तुं' काममनसोरपि' इस नियम से 'तुम्' के मकार का लोप हो जाता है ।

क्रम=कार्य । व्यपाश्रयणा=वि+अप+आ+श्रि+युच्+टाप्,प्रार्थना ।

(१०) सुखमिति । अन्वयः—अर्थः सुखं दातुं भवेत् । प्राणाः सुखं दातुं (भवेयुः) । तपः सुखं दातुं भवेत् । अन्यत् सर्वं सुखं भवेत् । न्यासस्य रक्षणं दुःखम् ।

शब्दार्थ—न्यास=धरोहर, थाती ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१०]

अवसितम्=समाप्त । अव+सो+क्त । विश्वासस्थानम्=विश्वासहेतुः ।

(११) पद्मावतीति । अन्वयः—यैः प्रथमं विपत्तिः दृष्टा अथ (तैः) पद्मावती नरपतेः महिषी भवित्री प्रदिष्टा । तत्प्रत्ययात् इदं कृतम् । विधिः सुपरीक्षितानि सिद्धवाक्यानि उत्क्रम्य नहि गच्छति ॥

शब्दार्थ—भवित्री—(भू+तृच्+ङीप्) कालान्तर में होनेवाली । प्रत्यय=विश्वास । उत्क्रम्य=[उत्+क्रम्+क्त्वा=ल्यप्], लाँघकर ।

समास—तत्प्रत्ययात्=तेषु प्रत्ययः (स० तत्पु०) तस्मात् । सिद्धवाक्यानि=सिद्धानां वाक्यं सिद्धवाक्यम् (ष० तत्पु०) तानि ।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम् । इस पद्य में आदेशिकों के कथन की दैव द्वारा भी अनतिक्रमणीयता का निर्देश किया गया है । [११]

ततः प्रविशति ब्रह्मचारी—यौगन्धरायण और वासवदत्ता के लावाणक से चले आने के बाद उदयन की दशा का वर्णन ब्रह्मचारी द्वारा कराना महाकवि भास के कलावैशिष्ट्य का योग्यतम परिचायक है । अतीत और वर्त्तमान की भविष्य के साथ योजना करने में भासकवि अद्वितीय हैं । काव्य शास्त्र में इसे निरुक्ति कहते हैं ।

(१२) **विस्रब्धमिति। अन्वयः**—हरिणाः देशागतप्रत्ययाः अचकिताः विस्रब्धं चरन्ति। सर्वे वृक्षाः पुष्पफलैः समृद्धविटपाः दयारक्षिताः। कपिलानि गोकुलधनानि भूयिष्ठम्। दिशः अक्षेत्रवत्यः। इदं तपोवनम् (इति) निस्सन्दिग्धम्। हि अयं धूमः बह्वाश्रयः।

शब्दार्थ—देश=तपोवन। अचकित=निर्भय। समृद्ध=भरी हुई। विटप=शाखा। गोकुलधन=सम्पत्ति-रूपी गो-समूह। भूयिष्ठम्=बहुत। अक्षेत्रवत्यः—क्षेत्र (खेत) रहित। बह्वाश्रय—कई स्थानों से निर्गत।

समास—देशागतप्रत्ययाः—देशेन (तपोवनेन) आगतः प्रत्ययः येषां (बहु०) ते।

अचकिताः=न चकिताः। (नञ् तत्पु०)। पुष्पफलैः—पुष्पाणि च फलानि च (इतरेतरद्वन्द्व) पुष्पफलानि तैः। समृद्धविटपाः=समृद्धाः विटपाः येषां (बहु०) ते। दयारक्षिताः—दयया रक्षिताः (तृ० तत्पु०)। गोकुलधनानि—गवां कुलम् (ष० तत्पु०)=गोकुलम् गोकुलानि धनानि इव (उपमितकर्मधारय)। अक्षेत्रवत्यः—न क्षेत्रवत्यः (नञ् तत्पु०)। बह्वाश्रयः—बहूनि (स्थानानि) आश्रयः यस्य (बहु०) सः।

विशेष—शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। भास की सरल शैली का यह उत्तम उदाहरण है। [१२]

अभ्यवपत्तुकामः—बचाने का इच्छुक। अनुक्रोशत्व=दयाभाव।

(१३) **नैवेति। अन्वयः**—इदानीं तादृशाः चक्रवाकाः नैव। स्त्रीविशेषैः वियुक्ताः अन्ये अपि नैव। भर्त्ता यां तथा वेत्ति सा स्त्री धन्या। हि भर्त्तृस्नेहात् सा दग्धा अपि अदग्धा।

शब्दार्थ—चक्रवाक=चकवा।

समास—स्त्रीविशेषैः=स्त्रीषु विशेषाः=स्त्रीविशेषाः,(निर्धारणे सप्तमी), अथवा स्त्रीणां विशेषाः (निर्धारणे षष्ठी), स्त्रीविशेषाः तैः स्त्रीविशेषैः।

भर्त्तृस्नेहात्=भर्त्तुः स्नेहः (ष० तत्पु०) भर्त्तृस्नेहः तस्मात्।

विशेष—शालिनी वृत्तम्। [१३]

पर्यवस्थापयितुम्—होश में लाने के लिए। परि+अव+स्था+णिच्+तुम्।

(१४) **अनाहारे इति । अन्वयः**—(सः हि) अनाहारे तुल्यः प्रतत-रुदितक्षामवदनः शरीरे नृपतिसमदुःखं संस्कारं परिवहन् दिवा वा रात्रौ वा यत्न नरपतिं परिचरति, नृपः सद्यः प्राणान् त्यजति यदि तस्य अपि उपरमः ।

शब्दार्थ—प्रतत=सतत, निरन्तर । क्षाम=क्षीण । संस्कार=वेषभूषा । परिचरति=सेवा करता है । सद्यः=शीघ्र । उपरमः=मृत्यु ।

समास—अनाहारः=न आहारः (नञ् तत्पु०) तस्मिन् । प्रततरुदित-क्षामवदनः—प्रततं (यथा स्यात्तथा) रुदितेन क्षामं वदनं यस्य (बहु०) सः । नृपतिसमदुःखम्—नृपतिना समं दुःखं यस्मिन् (बहु०) तत् ।

विशेष—शिखरिणी वृत्तम् । क्षाम=क्षै+क्त । इस पद्य से रुमण्वान् के बुद्धि-वैभव का पर्याप्त परिचय मिलता है । [१४]

(१५) **सविश्रम इति । अन्वयः**—हि अयं भारः सविश्रमः, तस्य तु श्रमः प्रसक्तः । हि यत्र नराधिपः अधीनः तस्मिन् सर्वम् अधीनम् ।

शब्दार्थ—सविश्रम=सान्त, जिसका अन्त अथवा विराम हो सके । प्रसक्त=निरन्तर, जिसका विराम न हो ।

समास—सविश्रमः=विश्रमेण सह वर्त्तते इति(बहु०)सः । नराधिपः=नराणाम् अधिपः (ष० तत्पु०) ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । इस पद्य में यौगन्धरायण ने अपनी अपेक्षा रुमण्वान की अधिक प्रशंसा की है । [१५]

(१६) **खगा इति । अन्वयः**—खगाः वासोपेताः, मुनिजनः सलिलम् अवगाढः । प्रदीप्तः अग्निः भाति । धूमः मुनिवनं प्रविचरति । अपि च असौ दूरात् परिभ्रष्टः रविः सङ्क्षिप्तकिरणः रथं व्यावर्त्य शनैः अस्तशिखरं प्रविशति ।

शब्दार्थ—खग=पक्षी । अवगाढ=स्नात । भाति=मालूम देती है । प्रदीप्त=प्रज्वलित । प्रविचरति=व्याप रहा है । परिभ्रष्ट=गिरा हुआ । सङ्क्षिप्तकिरणः=किरणों को समेटे हुए । व्यावर्त्य=लौटाकर ।

समास—वासोपेताः=वासम् उपेताः (द्वि० तत्पु०) । मुनिवनम्=मुनीनां वनम् (ष० तत्पु०) । सङ्क्षिप्तकिरणः=संक्षिप्ताः किरणाः येन (बहु०)सः । अस्तशिखरम्=अस्तस्य (अस्ताचलस्य) शिखरम् (ष० तत्पु०) ।

विशेष—शिखरिणी वृत्तम्। इस पद्य में सूर्यास्त होने की वेला का बहुत सुन्दर, स्वाभाविक चित्र खींचा गया है। [१६]

द्वितीय अंक

शब्दार्थ—माधवीलता=वासन्तीलता। मण्डप=कुंज। उत्कृत=ऊपर किये हुए। कर्णचूलिक=कर्णकुण्डल। स्वेद=पसीना। राग=ललाई। निर्वर्त्यताम्=व्यतीत करो। अपहसितुम्=हँसी उड़ाने को। निध्यायसि=सोच रही हो। तूष्णीका=चुप। निर्वृत्त=सम्पन्न। सानुक्रोश=दयालु। समुदाचार=शिष्टाचार। प्रतीष्ट=स्वीकृत। पर्यवस्थान=धीरता। कौतुक=विवाह।

तृतीय अंक

शब्दार्थ—संकुल=परिपूर्ण। चतुश्शाल=चौसाल। नीहार=कुहरा। प्रतिहत=अभिभूत। अमण्डितभद्रक=बिना अलंकृत किये भी सुन्दर। सङ्कीर्त्तन=प्रशंसा।

चतुर्थ अंक

शब्दार्थ—आवर्त्त=भँवरे। अनप्सरस्संवास=अप्सराओं के सहवास से रहित। उत्तरकुरु=देवभूमि, स्वर्ग। प्रच्छदन=गद्दा। वातशोणित=वातरक्त का रोग। आमय=रोग। परिभूत=ग्रस्त। कल्यवर्त्त=प्रातः भोजन।

अक्षिपरिवर्त्त=आँखों का उलट-पुलट होना। कुक्षिपरिवर्त्त—पेट का उलट-पुलट होना। प्रवाल—मूँगा। लम्बक—माला। आचित=व्याप्त। दक्षिणता=शिष्टाचरण, अनुकूलता। प्रचित=अवचित, जिसे चुन लिया हो। बन्धुजीव=पुष्प का नाम।

(१) कामेनेति। अन्वयः—तदा उज्जयिनीं गते अवन्तिराजतनयां स्वैरं दृष्ट्वा कामपि अवस्थां गते मयि कामेन पञ्च इषवः पातिताः। तैः अद्यापि हृदयं सशल्यम् एव। भूयः च वयं विद्धाः। यदा मदनः पञ्चेषुः, अयं षष्ठः शरः कथं पातितः?

शब्दार्थ—अवन्तिराजतनया=मालवराजकुमारी वासवदत्ता। स्वैरं=

स्वेच्छापूर्वक । काम्=अनिर्वचनीय । इषु=बाण । सशल्य=घाव से जनित पीड़ा से युक्त ।

समास—अवन्तिराजतनयाम्=अवन्तीनां राजा=अवन्तिराजः (ष० तत्पु०), अवन्तिराजस्य तनया (ष० तत्पु०) ताम् । सशल्यम्—शल्येन सह वर्त्तते इति तत् (बहु०) । पञ्चेषुः—पञ्च इषवो यस्य (बहु०) सः ।

विशेष—शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम् ।

पञ्चेषु—कामदेव के पांच पुष्प-बाण हैं । जैसे—

अरविन्दमशोकं च चूतं च नवमल्लिका ।
नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चबाणस्य सायकाः ॥

अथवा

उन्मादनस्तापनश्च शोषणः स्तम्भनस्तथा ।
सम्मोहनश्च कामस्य पञ्च बाणाः प्रकीर्तिताः ॥ [१]

शब्दार्थ—असन=वृक्षविशेष । सञ्चित=व्याप्त । अवगुण्ठित=आच्छादित । सप्तच्छद=विशेष प्रकार का वृक्ष, जिसकी प्रत्येक शाखा पर सात ही पुष्प होते हैं । आलिखित=चित्रित । प्रसारित=फैलाई हुई । समाहितम्=व्यवस्थित रूप से ।

(२) **ऋज्वायतामिति । अन्वयः**—ऋज्वायतां च विरलां च नतोन्नतां च निवर्त्तनेषु सप्तर्षिवंशकुटिलां च निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य अम्बरतलस्य विभज्यमानां सीमाम् इव एनां पश्यामि ।

शब्दार्थ—ऋजु=सीधी । आयत=दीर्घ । नत=नीची । उन्नत=ऊँची । निवर्त्तन=मोड़ । निर्मुच्यमान=कंचुक से रहित । भुजगोदर=साँप का पेट । विभज्यमानाम्=विभाजित की जा रही ।

समास—ऋज्वायताम्=ऋजुः च आयता चेति ऋज्वायता (कर्म०) ताम् । नतोन्नताम्—नता च उन्नता चेति (कर्म०) नतोन्नता ताम् । सप्तर्षिवंशकुटिलाम्—सप्त ऋषयः सप्तर्षयः, सप्तर्षीणां वंश इव कुटिला (उपमितकर्म०) ताम् । निर्मुच्यमानभुजगोदरनिर्मलस्य—भुजगस्य उदरम्=भुजगोदरम् (ष० तत्पु०), निर्मुच्यमानं भुजगोदरम् (कर्म०) निर्मुच्यमानभुजगोदरम्, निर्मुच्यमानभुजगोदरमिव निर्मलम् (उपमितकर्म०) तस्य ।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम् । केंचुली छोड़ते समय साँप के स्वच्छ उदर से गगन-तल की तुलना अति सुन्दर है । [२]

अवलम्बलता=आश्रयलता । अवधूय=हिलाकर ।

(३) **मधुमदेति । अन्वयः**—मधुमदकलाः मदनार्त्ताभिः प्रियाभिः उपगूढाः मधुकराः पादन्यासविषण्णाः वयम् इव कान्तावियुक्ताः स्युः ॥

शब्दार्थ—मधुमद—पुष्परसपान से जनित मस्ती । कल=अव्यक्त मधुर कूजन । आर्त्त—पीड़ित । उपगूढ=आलिङ्गित । मधुकर=भ्रमर । विषण्ण=शोकाकुल ।

समास—मधुमदकलाः=मधुनः मदः (ष० तत्पु०) मधुमदः, मधुमदेन कलाः (तृ० तत्पु०) । मदनार्त्ताभिः=मदनेन आर्त्ताः (तृ० तत्पु०) मदनार्त्ताः ताभिः । पादन्यासविषण्णाः—पादयोः न्यासः=पादन्यासः (ष० तत्पु०), पादन्यासेन विषण्णाः (तृ० तत्पु०) ।

विशेष—आर्या वृत्तम् । विरह की दुस्सह दशा का वर्णन प्रस्तुत किया गया है । [३]

यहाँ 'उभौ उपविशतः' के बाद स्वप्नवासवदत्तम् के कुछ संस्करणों में अधिक पाठ मिलता है, जैसे—

राजा—(अवलोक्य)

पादाक्रान्तानि पुष्पाणि सोष्म चेदं शिलातलम् ।
नूनं काचिदिहासीना मां दृष्ट्वा सहसा गता ॥

इस अंश का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार होगा—"राजा—(देखकर) पुष्प पाँवों तले दब गए हैं । यह शिलातल भी गर्म है । निश्चित ही यहाँ बैठी हुई कोई मुझे देखकर सहसा चली गई ।"

(४) **पद्मावतीति । अन्वयः**—यद्यपि पद्मावती रूपशीलमाधुर्यैः मम बहुमता, वासवदत्ताबद्धं मे मनः तु तावत् न हरति ।

शब्दार्थ—बहुमता=आदरणीय । बद्ध=आकृष्ट ।

समास—रूपं च शीलं च माधुर्यं च इति रूपशीलमाधुर्याणि (द्वन्द्व) तैः । वासवदत्ताबद्धम्=वासवदत्तायां बद्धम् (स० तत्पु०) ।

विशेष—आर्या वृत्तम् । [४]

(५) **अनेनेति । अन्वयः**—अनेन परिहासेन त्वया मे मनः व्याक्षिप्तम् । ततः पूर्वाभ्यासेन इयं वाणी तथा एवं निस्सृता ।

शब्दार्थ—परिहास=नर्मभाषित । व्याक्षिप्त—अस्थिर । पूर्वाभ्यास—पूर्वकालिक अभ्यास ।

समास—पूर्वाभ्यासेन—पूर्वः अभ्यासः=पूर्वाभ्यासः (कर्म०) तेन ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [५]

(६) **दुःखं त्यक्तुम् इति । अन्वयः**—बद्धमूलः अनुरागः त्यक्तुं दुःखम् । स्मृत्वा स्मृत्वा दुःखं नवत्वं याति । एषा तु यात्रा यद् इह बाष्पं विमुच्य प्राप्तानृण्या बुद्धिः प्रसादं याति ।

शब्दार्थ—बद्धमूलः—चिरपरिचित होने से दृढ़ । अनुराग—प्रेम । बाष्पं विमुच्य=आँसू बहाकर । प्राप्तानृण्या=उऋण होकर । प्रसाद—स्वच्छता, निर्मलता ।

समास—बद्धमूलः=बद्धं मूलं येन (बहु०) यस्य वा सः । प्राप्तानृण्या—प्राप्तम् आनृण्यं यया (बहु०) सा ।

विशेष—शालिनी वृत्तम् । [६]

(७) **शरच्छशाङ्केति । अन्वयः**—भामिनि ! शरच्छशाङ्कगौरेण वाताविद्धेन काशपुष्पलवेन इदं मम मुखं साश्रुपातम् ।

शब्दार्थ—भामिनि=सुन्दरि । आविद्ध=प्रेरित । लव=कण ।

समास—शरच्छशाङ्कगौरेण—शरत्कालीनः शशाङ्कः (मध्यमपदलोपी कर्म०) शरच्छशाङ्कः, शरच्छशाङ्कवत् गौरः (उपमित कर्म०) तेन । वाताविद्धेन—वातेन आविद्धः (तृ० तत्पु०) वाताविद्धः, तेन । काशपुष्पलवेन—काशा एव पुष्पाणि काशपुष्पाणि (कर्म०), काशपुष्पाणां लवः (ष० तत्पु०) तेन । साश्रुपातम्—अश्रूणां पातः (ष० तत्पु०) अश्रुपातः, अश्रुपातेन सह (वर्तते इति) (बहु०) तत् ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [७]

(८) **इयमिति । अन्वयः**—इयं बाला नवोद्वाहा, सत्यं श्रुत्वा व्यथां व्रजेत् । इयं कामं धीरस्वभावा । स्त्रीस्वभावः तु कातरः ।

शब्दार्थ—उद्वाह=विवाह ।

समास—नवोद्वाहा=नवः उद्वाहः यस्याः (बहु०), सा । धीरस्वभावा =धीरः स्वभावो यस्याः (बहु०) सा । स्त्रीस्वभावः=स्त्रीणां स्वभावः (ष० तत्पु०) स्त्रीस्वभावः ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [८]

(९) **गुणानामिति । अन्वयः**—विशालानां गुणानां वा सत्काराणां च लोके नित्यशः कर्त्तारः सुलभाः, विज्ञातारः तु दुर्लभाः ।

शब्दार्थ—विज्ञातारः—जानकार ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [९]

पञ्चम अंक

(१) **श्लाघ्यामिति । अन्वयः**—कालक्रमेण पुनरागतदारभारः लावाणके हुतवहेन हृताङ्गयष्टिं श्लाघ्याम् अवन्तिनृपतेः सदृशीं तनूजां तां हिमहतां पद्मिनीम् इव चिन्तयामि ।

शब्दार्थ—कालक्रम=समयगति । हुतवह=अग्नि । अङ्गयष्टि=सुन्दर अंग । हृत=खण्डित ।

समास—कालक्रमेण=कालस्य क्रमः (ष० तत्पु०) तेन । पुनरागतदारभारः=पुनः आगतः दाराणां भारः यस्य (बहु०) सः । हृताङ्गयष्टिः=हृता अङ्गयष्टिः (अङ्गानि यष्टिरिव) यस्याः (बहु०) सा । हिमहताम्=हिमेन हता (तृ० तत्पु०) ताम् ।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम् । [१]

(२) **रूपश्रियेति । अन्वयः**—रूपश्रिया समुदितां गुणतः च युक्तां प्रियां लब्ध्वा पूर्वाभिघातसरुजः अपि मम शोकः अद्य तु मन्दः इव । अनुभूतदुःखः पद्मावतीम् अपि तथैव समर्थयामि ।

शब्दार्थ—समुदित=युक्त । अभिघात=चोट । सरुज=पीडित । समर्थयामि=समझता हूँ ।

समास—रूपश्रिया=रूपस्य श्रीः (ष० तत्पु०) रूपश्रीः, तया। पूर्वाभिघातसरुजः—पूर्वः अभिघातः (कर्म०)=पूर्वाभिघातः, पूर्वाभिघातेन सरुक् (तृ० तत्पु०) तस्य।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम्।

'पूर्वाभिघात' से वासवदत्ता के विनाश का तात्पर्य है। [२]

काकोदर=साँप; क=ईषत्; अकति=गच्छति; अक कुटिलायां गतौ। क+अकः=काकः। काकस्य उदरमिव उदरं यस्य (बहु०) सः। वैधेय=मूर्ख।

(३) **ऋज्वायतामिति। अन्वयः**—मूर्ख! ऋज्वायतां क्षितौ भ्रष्टां मुखतोरणलोलमालां त्वं सर्पम् अवगच्छसि। या निशि मन्दानिलेन परिवर्त्तमाना भुजगस्य विचेष्टितानि किञ्चित् करोति।

शब्दार्थ—ऋजु=सरल। आयत=दीर्घ। भ्रष्ट=पतित। मुखतोरण=गृह का बहिर्द्वार। लोल=चञ्चल। अवगच्छसि=समझ रहे हो। परिवर्त्तमाना=उलट-पुलट होती हुई। चेष्टित=गति।

समास—ऋज्वायताम्=ऋजुः च असौ आयता चेति (कर्म०) ऋज्वायता, ताम्। मुखतोरणलोलमालाम्=मुखं तोरणम् (कर्म०) मुखतोरणम्। लोला माला (कर्म०) लोलमाला, मुखतोरणे लोलमाला (स० तत्पु०) मुखतोरणलोलमाला, ताम्। मन्दानिलेन=मन्दः अनिलः(कर्म०)मन्दानिलः, तेन।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम्। [३]

(४) **शय्येति। अन्वयः**—शय्या न अनवता, तथाऽऽस्तृतसमा, न व्याकुलप्रच्छदा। अमलं शिरोपधानं शीर्षाभिघातौषधैः नहि क्लिष्टम्। रोगे दृष्टिविलोभनं जनयितुं काचित् शोभा न कृता। प्राणी रुजा शयनं प्राप्य पुनः स्वयं द्रीघ्र न मुञ्चति।

शब्दार्थ—अवनता=दबी हुई। प्रच्छद=चद्दर। व्याकुल=सिकुड़ी हुई। उपधान=तकिया। उपघात=पीड़ा। दृष्टिविलोभन=मनोविनोद। रुज्=रोग।

समास—आस्तृतसमा=आस्तृता चासौ समा च (कर्म०)। व्याकुलप्रच्छदा=व्याकुलः प्रच्छदः यस्यां (बहु०) सा। शिरोपधानम्=शिरसः

उपधानम् (ष० तत्पु०)। शीर्षाभिघातौषधैः=शीर्षस्य अभिघातः (ष०तत्पु०) शीर्षाभिघातः, शीर्षाभिघातस्य औषधानि (ष० तत्पु०), तैः। दृष्टिविलोभनम् =दृष्टेः विलोभनम् (ष० तत्पु०)।

विशेष—शार्दूलविक्रीडितं वृत्तम्। [४]

(५) **स्मरामीति। अन्वयः**—प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः नयनान्त-लग्नं प्रवृत्तं बाष्पं स्नेहात् मम एव उरसि पातयन्त्याः अवन्त्याधिपतेः सुतायाः स्मरामि।

शब्दार्थ—स्वजन=आत्मीय बन्धुजन। नयनान्त=नेत्रकोण। उरस् =वक्षःस्थल।

समास—प्रस्थानकाले=प्रस्थानस्य कालः (ष० तत्पु०) प्रस्थानकालः तस्मिन्। स्वजनम्=स्वः जनः(कर्म०)तम्। नयनान्तलग्नम्—नयनयोः अन्तौ =नयनान्तौ (ष० तत्पु०), नयनान्तयोः लग्नम् (स०तत्पु०)। अवन्त्याधिपतेः अवन्त्याः आ (समन्तात्) अधिपतिः=अवन्त्याधिपतिः (ष० तत्पु०), तस्य।

विशेष—उपजातिवृत्तम्। 'अवन्त्याधिपतेः'—इस वाक्यांश में कुछ विद्वानों ने समास नहीं माना है। इनके मत से 'अवन्त्या' तृतीया एकवचन है। 'हेतौ तृतीया' मानकर 'अवन्त्याधिपतेः' का अर्थ होगा—'अवन्ति का शासक होने के कारण स्वामी।'

किन्तु 'अवन्त्याधिपतेः' को समस्त पद अथवा 'अवन्त्या' को तृतीयान्त पद मानने की कल्पना क्लिष्ट है। अतः 'अवन्त्या' को षष्ठ्यन्त प्रयोग मानकर 'अधिपतेः' के साथ दीर्घ सन्धि को आर्ष मानना ही युक्त होगा। [५]

(६) **बहुशः इति। अन्वयः**—उपदेशेषु बहुशः अपि माम् ईक्षमाणया यया स्रस्तकोणेन हस्तेन आकाशवादितं कृतम्।

शब्दार्थ—कोण—वीणा बजाने का साधन, अर्थात् वह यन्त्र, जिसे हाथ में लेकर वीणा बजाई जाती है। आकाशवादित—शून्य में वीणा बजाना।

समास—स्रस्तकोणेन—स्रस्तः कोणः यस्मात् (बहु०), तेन। आकाश-वादितम्=आकाशे वादितम् (सप्तमी तत्पु०)।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [६]

(७) **निष्क्रामन्निति । अन्वयः**—सम्भ्रमेण निष्क्रामन् अहं द्वारपक्षेण ताडितः । ततः अयं मनोरथः भूतार्थः इति व्यक्तं न जानामि ।

शब्दार्थ—सम्भ्रम=सहसा । द्वारपक्ष=द्वार का पार्श्व भाग । भूतार्थ =सत्यार्थ ।

समास—द्वारपक्षेण=द्वारस्य पक्षः (ष० तत्पु०), तेन । भूतार्थः= भूतः अर्थः (कर्म०) ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [७]

(८) **शय्यायामिति । अन्वयः**—सखे ! शय्यायाम् अवसुप्तं मां बोधयित्वा गता । 'दग्धा' इति पूर्वं ब्रुवता रुमण्वता वञ्चितः अस्मि ।

शब्दार्थ—अवसुप्त=सुप्त । रुमण्वत्=उदयन के एक कुशल अमात्य का नाम ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [८]

(९) **यदिति । अन्वयः**—यदि तावत् अयं स्वप्नः अप्रतिबोधनं धन्यम् । अथ अयं विभ्रमः वा स्यात्, विभ्रमः मे चिरं हि अस्तु ।

शब्दार्थ—अप्रतिबोधन=अजागरण । विभ्रम—भ्रान्ति ।

समास—अप्रतिबोधनम्=न प्रतिबोधनम् (नञ् तत्पु०)

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [९]

(१०) **स्वप्नस्येति । अन्वयः**—स्वप्नस्य अन्ते विबुद्धेन मया चारित्रम् अपि रक्षन्त्याः नेत्रविप्रोषिताञ्जनं दीर्घालकं मुखं दृष्टम् ।

शब्दार्थ—विबुद्ध—जागृत । चारित्र=चरित्र । विप्रोषित=निर्गत । अलक=केश ।

समास—नेत्रविप्रोषिताञ्जनम्=नेत्राभ्यां विप्रोषितम् अञ्जनं यस्मिन् (बहु०) तत् । दीर्घालकम्—दीर्घाः अलकाः यस्मिन् (बहु०) तत् ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१०]

(११) **योऽयमिति । अन्वयः**—सन्त्रस्तया तया देव्या योऽयं बाहुः निपीडितः स्वप्ने अपि उत्पन्नसंस्पर्शः रोमहर्षं न मुञ्चति ।

शब्दार्थ—निपीडितः=धीरे से पकड़ा। रोमहर्ष=रोमाञ्च।

समास—उत्पन्नसंस्पर्शः=उत्पन्नः संस्पर्शः यस्य (बहु०) सः। रोमहर्षम्=रोम्णां हर्षः तम् (ष० तत्पु०)।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम्। [११]

(१२) **भिन्ना इति। अन्वयः**—ते रिपवः भिन्नाः, भवद्गुणरताः पौराः समाश्वासिताः। भवत्प्रयाणसमये या अपि पार्ष्णीं तस्याः विधानं कृतम्। यद् यद् अरिप्रमाथजननं साध्यं तत् तत् मया अनुष्ठितम्। अपि च बलैः त्रिपथगा नदी तीर्णा। वत्साः च तव हस्ते।

शब्दार्थ—भिन्नाः=भेदनीति से अलग-अलग कर दिए गए। समाश्वासिताः=धीरज बँधाए गए। प्रयाण=युद्धयात्रा। पार्ष्णी=सेना का पृष्ठभाग। विधान=रक्षा की व्यवस्था। अरिप्रमाथ=शत्रु-संहार। जनन=साधक; साध्य=उपाय। बल=सेना। त्रिपथगा=गंगा।

समास—भवद्गुणरताः=भवतः गुणेषु रताः(स०तत्पु०)। भवत्प्रयाणसमये—भवतः प्रयाणम् (ष० तत्पु०); भवत्प्रयाणस्य समयः (ष० तत्पु०) तस्मिन्। अरिप्रमाथजननम्—अरेः प्रमाथः (ष० तत्पु०) अरिप्रमाथः, अरिप्रमाथस्य जननम् (ष० तत्पु०)। त्रिपथगा—त्रयाणां पथां समाहारः (द्विगु) त्रिपथम्। त्रिपथेन गच्छतीति (उपपदसमासः); अथवा त्र्यवयवः पन्थाः त्रिपथः (मध्यमपदलोपी कर्मधारय); त्रिपथेन गच्छतीति सा।

विशेष—शार्दूलविक्रीडितम्। [१२]

(१३) **उपेत्येति। अन्वयः**—नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे महार्णवाभे युधि दारुणकर्मदक्षम् आरुणिम् उपेत्य नाशयामि।

शब्दार्थ—दारुणकर्म=भयानक कर्म अर्थात् युद्ध में नरसंहार-रूपी कर्म। आरुणि=उदयन के शत्रु का नाम। नागेन्द्र=गजराज। विकीर्ण=फेंके गये। भङ्ग=खण्ड। आभ=सदृश।

समास—दारुणकर्मदक्षम्=दारुणानि कर्माणि (कर्म०) तेषु दक्षः (स० तत्पु०), तम्। नागेन्द्रतुरङ्गतीर्णे—नागेषु इन्द्राः=नागेन्द्राः (स० तत्पु०), अथवा नागानाम् इन्द्राः (ष० तत्पु०); नागेन्द्राश्च तुरङ्गाश्चेति नागेन्द्रतुरङ्गाः (इतरेतरद्वन्द्व); अथवा नागेन्द्राणां तुरङ्गाणां च समाहारः नागेन्द्रतुरङ्गम्;

(समाहारद्वन्द्व) नागेन्द्रतुरङ्गैः अथवा नागेन्द्रतुरङ्गेण तीर्णः (तृ० तत्पु०) तस्मिन् । यद्वा—नागेन्द्रतुरङ्गाः तीर्णाः यस्मिन् (बहु०) तस्मिन् ।

विकीर्णबाणोग्रतरङ्गभङ्गे—उग्राः तुरङ्गाः (कर्म०); उग्रतरङ्गाणां भङ्गाः (ष० तत्पु०); बाणाः उग्रतरङ्गभङ्गाः इव (उपमितकर्मधारय) । विकीर्णाः बाणोग्रतरङ्गभङ्गाः यस्मिन् (बहु०) ।

महार्णवाभे—महान् अर्णवः=महार्णवः (कर्म०); महार्णवस्य आभा इव आभा यस्य (बहु०) सः, तस्मिन् ।

विशेष—उपेन्द्रवज्रा वृत्तम् । रणभूमि की समुद्र से तुलना अतीव सुन्दर है । [१३]

षष्ठ अंक

विष्कम्भक—भूत और भविष्य की छोटी-छोटी घटनाओं को सूचित करने का यह एक प्रकार है । यदि एक अथवा दो मध्यम पात्र इन घटनाओं को सूचित करते हैं तो यह शुद्ध विष्कम्भक होता है । किन्तु जब नीच और मध्यम पात्रों द्वारा ये घटनाएँ सूचित होती हैं तब यह मिश्र विष्कम्भक होता है । प्रस्तुत विष्कम्भक में कांचुकीय मध्यम पात्र है और प्रतीहारी नीच पात्र है । संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का भी मिश्रण हुआ है, अतः यह मिश्र विष्कम्भक है । लक्षण इस प्रकार है—

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भो मध्यपात्रप्रयोजितः ॥
एकानेककृतः शुद्धः संकीर्णो नीचमध्यमैः ॥

(१) **श्रुतीति । अन्वयः**—श्रुतिसुखनिनदे ! देव्याः स्तनयुगले जघनस्थले च सुप्ता त्वं विहगगणरजोविकीर्णदण्डा कथं नु प्रतिभयम् अरण्यवासम् अध्युषिता असि ।

शब्दार्थ—श्रुति=कान । जघनस्थल= सुन्दर जाँघें; स्थल शब्द प्रशंसावाचक है । विहग=पक्षी । रजस्=धूल । विकीर्ण=व्याप्त । प्रतिभय= भयङ्कर । अध्युषिता=रही हो ।

समास—श्रुतिसुखनिनदे= श्रुतिभ्यां सुखः (च० तत्पु०), श्रुतिसुखः

निनदो यस्याः (बहु०) सा, तत्सम्बुद्धौ । स्तनयुगले=स्तनयोः युगलम् (ष० तत्पु०) स्तनयुगलम्, तस्मिन् । विहगगणरजोविकीर्णदण्डा—विहगानां गणः (ष० तत्पु०) विहगगणः; विहगगणस्य रजः (ष० तत्पु०) विहगगणरजः, विहगगणरजसा विकीर्णः दण्डः यस्याः (बहु०) सा । प्रतिभयम्—प्रतिगतं भयम्, (प्रादितत्पु०) । अरण्यवासम्—अरण्ये वासः (स० तत्पु०) अरण्यवासः तम् ।

विशेष—पुष्पिताग्रा वृत्तम् । [१]

(२) **श्रोणीति । अन्वयः**—श्रोणीसमुद्वहनपार्श्वनिपीडितानि, खेदस्तनान्तरसुखानि उपगूहितानि विरहे मां च उद्दिश्य परिदेवितानि वाद्यान्तरेषु सस्मितानि कथितानि च (न स्मरसि) ।

शब्दार्थ—श्रोणी=गोद, जाँघें । समुद्वहन=उठाना । अन्तर=बीच । परिदेवित=विलाप ।

समास—श्रोणी० श्रोण्यां समुद्वहनानि (स० तत्पु०), पार्श्वेन निपीडितानि (तृ० तत्पु०); श्रोणीसमुद्वहनानि च पार्श्वनिपीडितानि च (द्वन्द्व) । खेदस्तनान्तरसुखानि—खेदे स्तनान्तरे सुखानि (स० तत्पु०) । वाद्यान्तरेषु—अन्यत् वाद्यं वाद्यान्तरम् (नित्यसमास) तेषु ।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम् । [२]

(३) **चिरप्रसुप्त इति । अन्वयः**—चिरप्रसुप्तः मे कामः वीणया प्रतिबोधितः । यस्याः घोषवती प्रिया तां देवीं तु न पश्यामि ।

शब्दार्थ—प्रतिबोधितः=जगा दिया ।

समास—चिरप्रसुप्तः=चिरं प्रसुप्तः (द्वि० तत्पु०) ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [३]

(४) **किं वक्ष्यतीति । अन्वयः**—किं वक्ष्यति इति मे हृदयं परिशङ्कितम्, सा कन्या मया अपहृता, अपि च न रक्षिता । चलैः भाग्यैः महदवाप्तगुणोपघातः पितुः जनितरोषः पुत्रः इव भीतः अस्मि ।

शब्दार्थ—अवाप्त=प्राप्त । गुणोपघात=दोष, अपराध ।

समास—महदवाप्तगुणोपघातः=गुणानाम् उपघातः (ष० तत्पु०); महत् अवाप्तः (सुप्सुपासमास) महदवाप्तः; महदवाप्तः गुणोपघातः येन (बहु०) सः। जनितरोषः—जनितः रोषः येन (बहु०) सः।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम्। [४]

(५) **सम्बन्धीति। अन्वयः**—इदं सम्बन्धिराज्यम् एत्य महान् प्रहर्षः। नृपसुतानिधनं श्रुत्वा विषादः। दैव! यदि परैः अपहृतं राज्यं (प्राप्तं भवेत्) देव्याः कुशलं च (भवेत्), भवता किं नाम कृतं न स्यात्।

समासः—सम्बन्धिराज्यम्=सम्बन्धिनः राज्यम् (ष० तत्पु०), नृपसुतानिधनम्—नृपस्य सुता (ष० तत्पु०) नृपसुता, नृपसुतायाः निधनम् (ष० तत्पु०)।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम्। [५]

(६) **पृथिव्यामिति। अन्वयः**—पृथिव्यां राजवंश्यानाम् उदयास्तमयप्रभुः मया काङ्क्षितबान्धवः स राजा अपि कुशली?

समास—राजवंश्यानाम्—राज्ञां वंश्याः=राजवंश्याः तेषाम्। उदयास्तमयप्रभुः=उदयश्च अस्तमयश्च तौ उदयास्तमयौ (द्वन्द्व) तयोः प्रभुः (ष० तत्पु०)। काङ्क्षितबान्धवः=काङ्क्षितं बान्धवं येन (बहु०) सः।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम्। [६]

(७) **कातरा इति। अन्वयः**—ये कातराः अपि वा अशक्ताः तेषु उत्साहः न जायते। प्रायेण हि सोत्साहैः एव नरेन्द्रश्रीः भुज्यते।

समासः—अशक्ताः=न शक्ताः (नञ् तत्पु०)। सोत्साहैः—उत्साहेन सह वर्त्तन्ते इति सोत्साहाः (बहु०) तैः। नरेन्द्रश्रीः=नराणाम् इन्द्रः (ष० तत्पु), नरेन्द्रस्य श्रीः (ष० तत्पु०)।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम्। 'साहसे श्रीः प्रतिवसति।' [७]

(८) **अहमिति। अन्वयः**—पूर्वं तावत् अहम् अवजितः, सुतैः सह लालितः, मया कन्या दृढम् अपहृता, भूयः च न रक्षिता। तस्याः निधनम् अपि च श्रुत्वा मयि तथैव स्वता। ननु यद् उचितान् वत्सान् प्राप्तुम् अत्रः नृपः हि कारणम्।

शब्दार्थ—उचितान्=अर्थात् वत्सदेश का वह भू-भाग, जो शत्रु ने छीन लिया था।

विशेष—हरिणी वृत्तम् । [८]

(९) **षोडशेति । अन्वयः**—ननु षोडशान्तःपुरज्येष्ठा पुण्या नगरदेवता, मम प्रवासदुःखार्त्ता माता कुशलिनी ?

समास—षोडशानाम् अन्तःपुराणां ज्येष्ठा (ष० तत्पु०), नगरदेवता नगरस्य देवता (ष० तत्पु०) । प्रवासदुःखार्त्ता=प्रवासस्य दुःखं प्रवासदुःखम् (ष० तत्पु), प्रवासदुःखेन आर्त्ता (तृ० तत्पु०) ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [९]

(१०) **क इति । अन्वयः**—मृत्युकाले कः कं रक्षितुं शक्तः? रज्जुच्छेदे के घटं धारयन्ति ? एवं वनानां तुल्यधर्मः लोकः काले काले छिद्यते रुह्यते च ।

समास—मृत्युकाले=मृत्योः कालः (ष० तत्पु०) तस्मिन् । रज्जुच्छेदे=रज्ज्वाः छेदः (ष० तत्पु०) तस्मिन् । तुल्यधर्मः=तुल्यः धर्मः यस्य (बहु०) सः ।

विशेष—शालिनी वृत्तम् । [१०]

(११) **महासेनस्येति । अन्वयः**—महासेनस्य दुहिता मे प्रिया शिष्या देवी च । कथं देहान्तरेषु अपि सा मया स्मर्तुं न शक्या ?

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [११]

(१२) **वाक्यमिति । अन्वयः**—राज्यलाभशतात् अपि एतत् वाक्यं प्रियतरम् यत् अपराद्धेषु अपि अस्मासु स्नेहः न विस्मृतः ।

समास—राज्य०—राज्यस्य लाभः (ष० तत्पु०) तस्मात् ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१२]

(१३) **कस्येति । अन्वयः**—अस्य स्निग्धस्य वर्णस्य दारुणा विपत्तिः कथम् ? इदं च मुखमाधुर्यम् अग्निना कथं दूषितम् ?

समास—मुखमाधुर्यम्—मुखस्य माधुर्यम् (ष० तत्पु०) ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१३]

(१४) **यदीति । अन्वयः**—यदि विप्रस्य भगिनी व्यक्तम् अन्या भविष्यति । लोके परस्परगता रूपतुल्यता दृश्यते ।

समास—परस्परगता=परस्परं गता (द्वि० तत्पु०) । रूपतुल्यता—रूपाणां, रूपयोर्वा तुल्यता (ष० तत्पु०) ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१४]

(१५) **प्रच्छाद्येति । अन्वयः**—नृपतेः हितार्थं राजमहिषीं प्रच्छाद्य मया इदं हितम् इति अवेक्ष्य कामं कृतम् । मम कर्मणि सिद्धे अपि मम हृदयम् 'असौ पार्थिवः किं वक्ष्यति' इति परिशङ्कितम् ।

समास—हितार्थम्=हिताय इदम् (नित्यसमास), राजमहिषीम्—राज्ञः महिषी (ष० तत्पु०) ताम् ।

विशेष—वसन्ततिलका वृत्तम् । [१५]

(१६) **भरतानामिति । अन्वयः**—भरतानां कुले जातः, विनीतः, ज्ञानवान्, शुचिः, राजधर्मस्य देशिकः (असि) । तत् बलात् हर्तुं न अर्हसि ।

समास—राजधर्मस्य—राज्ञः धर्मः (ष० तत्पु०), तस्य ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१६]

(१७) **किन्विति । अन्वयः**—किन्नु इदं सत्यम्, स्वप्नः, सा मया भूयः दृश्यते । अनया दृष्टया अपि तदा अहम् एवम् एव वञ्चितः ।

विशेषः—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१७]

(१८) **मिथ्योन्मादैरिति । अन्वयः**—मिथ्योन्मादैः च, युद्धैः च, शास्त्रदृष्टैः मन्त्रितैः च, भवद्यत्नैः वयं खलु मज्जमानाः समुद्धृताः ।

शब्दार्थ—उन्माद=पागलपन । मज्जमानाः—डूबते हुए ।

समास—मिथ्योन्मादैः—मिथ्या उन्मादः (सुप्सुपा समासः) मिथ्योन्मादः तैः । शास्त्रदृष्टैः=शास्त्रेषु दृष्टानि (स० तत्पु०) तैः ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१८]

(१९) **इमामिति । अन्वयः**—सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् एकातपत्राङ्काम् इमां महीं नः राजसिंहः प्रशास्तु ।

समास—सागरपर्यन्ताम्=सागराः पर्यन्ताः यस्याः (बहु०) सा, ताम् । हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम्=हिमवद्विन्ध्यौ कुण्डले यस्याः (बहु०) ताम् । एकातपत्राङ्काम्=एकम् आतपत्रम् एकातपत्रम् (कर्म०), एकातपत्रम् अङ्को यस्याः (बहु०) ताम् । राजसिंहः=राजा सिंह इव (उपमितकर्मधारय) ।

विशेष—अनुष्टुप् वृत्तम् । [१९]

———

(जिनमें मूल पाठ के साथ संस्कृत-हिन्दी टीका, भूमिका,
नोट्स एवं अन्य छात्रोपयोगी सामग्री हैं)

अभिषेक-नाटक (भासकृत) (संस्कृत-हिन्दी टीका) : सं० मोहनदेव पंत
अमरुशतकम्—अमरुक
उत्तररामचरित : आनन्दस्वरूप
कथासरित्सागर : सोमदेव-सं० जगदीशलाल शास्त्री
काव्यप्रकाश : (प्रथम भाग)-रामसागर त्रिपाठी
कादम्बरी : मोहनदेव पंत
किरातार्जुनीयम् (१-४ सर्ग) : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
कुमारसंभव (१-२ सर्ग) : जगदीशलाल शास्त्री
चन्द्रालोक (संस्कृत-हिन्दी टीका)-सुबोधचन्द्र पन्त
चित्रकाव्यकौतुक (संस्कृत) : रामरूप पाठक, सं० प्रेमलता शर्मा
दशकुमारचरित (सम्पूर्ण) : सुबोधचन्द्र पन्त एवं विश्वनाथ झा
दशरूपक (संस्कृत-हिन्दी टीका) : बी० एन० पाण्डेय
ध्वन्यालोक (संस्कृत-हिन्दी टीका) (तृतीय व चतुर्थ उद्योत) : रामसागर त्रिपाठी
पंचतन्त्र (सम्पूर्ण) : श्यामाचरण पाण्डेय
प्रसन्नराघव : रमाशंकर त्रिपाठी
प्रतिमानाटक (संस्कृत-हिन्दी टीका) : श्रीधरानन्द शास्त्री
मालविकाग्निमित्र : सं० संसारचन्द्र एवं मोहनदेव पन्त
मेघदूत : संसारचन्द्र
मृच्छकटिकम् (सं० हिन्दी टीका): रमाशंकर त्रिपाठी
विक्रमोर्वशीय : रामविलास त्रिपाठी
वेणीसंहार : रमाशंकर त्रिपाठी
शिशुपालवध (१-४ सर्ग) : जनार्दन शास्त्री पाण्डेय
साहित्यदर्पण : शालिग्राम शास्त्री
सौन्दरनन्द (अश्वघोष कृत) : अनु० सूर्यनारायण चौधरी
स्वप्नवासवदत्त : जयपाल विद्यालंकार
हितोपदेश (मित्रलाभ) : विश्वनाथ शर्मा

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली वाराणसी पटना बंगलौर चेन्नई
पुणे मुम्बई कलकत्ता

मूल्यः रु० १५